जोज़फ़ मेज़िनी

आप क्या करें ?

सुबोध प्रकाशन
चरख़ेवालां, दिल्ली

महान राजनीतिज्ञ व सुप्रसिद्ध विचारक की
सुविख्यात कृति
'ड्यूटीज़ ऑफ मैन'
(Duties of Man)
का स्वतन्त्र अनुवाद।

मूल्य	तीन रुपये (३·००)
प्रथम संस्करण	सितम्बर १९६२
अनुवादक	श्यामचन्द्र कपूर
प्रकाशक	सुबोध प्रकाशन, दिल्ली
मुद्रक	मुद्रण-कला केन्द्र द्वारा
	नूतन प्रेस, चाँदनी चौक, दिल्ली

न हँसो देख के तदबीर को पलटे खाते।
देर लगती नहीं तक़दीर को पलटे खाते ॥

प्रकाशकीय

'आप क्या करें ?' संसार के महान राजनीतिज्ञ व सुप्रसिद्ध विचारक जोज़फ़ मेज़िनी की सुविख्यात कृति 'ड्यूटीज़ ऑफ मैन' (Duties of Man) का स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद है।

अवश्य ही हमारे पाठक जोजफ़ मेजिनी के नाम से भली-भाँति परिचित होंगे। विशाल इटली साम्राज्य के निर्माता की यह महत्वपूर्ण कृति अपने ढंग की अकेली पुस्तक है, जिसमें उन्होंने मनुष्य के कर्तव्यों के प्रति इंगित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक, आपको अपने कर्तव्य का ज्ञान कराती है। संसार के प्रति, राष्ट्र के प्रति, परिवार के प्रति और यहाँ तक कि आपके अपने प्रति आपका क्या कर्तव्य है और किस प्रकार आपको उसे पूरा करना चाहिये इसका पूर्ण एवं मनोविषलेषणात्मक दिग्दर्शन इस पुस्तक में कराया गया है। पाप, अहंकार और अत्याचार समाप्त करके सम्पूर्ण विश्व में मानवता का सुसाम्राज्य किस प्रकार फैल सकता है और कैसे सुख समृति में वृद्धि हो सकती है, इसके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक आपको अपना कर्तव्य निश्चित करने में अद्भुत सहायता प्रदान करेगी।

हमें आशा है और साथ ही विश्वास भी कि हिन्दी के पाठक हमारे अन्य प्रकाशनों की भाँति इस पुस्तक को भी अपनायेंगे और भविष्य में और भी श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करने के लिए हमें प्रोत्साहित करेंगे।

अनुक्रमणिका

ईश्वर के प्रति

आपके सर्वप्रथम कर्तव्य ईश्वर के प्रति हैं। यह आपके सब कर्तव्यों के मूलाधार हैं। ईश्वर की खोज और ईश्वरीय नियमों को व्यवहार में लाना ही मानवता का कार्य है।

ईश्वर है। उसकी सत्ता को सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं। उसे सिद्ध करने की चेष्टा अनधिकार चेष्टा होगी और उसकी सत्ता से इनकार करना मूर्खता। ईश्वर की सत्ता है; क्योंकि हमारी सत्ता है। ईश्वर हमारी आत्मा में है। मानवता की आत्मा में वह व्याप्त है। वह हमारे चारों ओर परिव्याप्त विश्व में विराजमान है। हमारी आत्मा एकान्त, दुख या सुख के पवित्र क्षणों में उसकी अनुभूति प्राप्त करती है। मानवता ने ईश्वर का विविध प्रकार से वर्णन किया, उसका रूप भी कहीं-कहीं बिगाड़ने का प्रयास किया; परन्तु उसके पवित्र नाम को मानवना कभी नहीं दबा सकी। यह विश्व अपने नियमों द्वारा, समन्वय द्वारा, अपनी क्रमानुक्रमता द्वारा ईश्वर का निदर्शन कराता है। संसार की गति में जो निश्चित योजना और नियम हैं वे ईश्वर के रूप को प्रकट करते हैं। आप शायद नास्तिक नहीं; यदि आप हों भी तो आपकी निन्दा करने की, आपको श्राप देने की आवश्यकता नहीं; बल्कि आपके लिए आँसू बहाने की आवश्यकता है। क्योंकि जो व्यक्ति, तारों भरी रात में श्मशान घाट में, या शहीद के शव के समीप, ईश्वर से इनकार करता है, वह

या तो अत्यन्त दुखी व्यक्ति है या फिर वह शरारती है। सबसे पहला नास्तिक वास्तव में वह व्यक्ति था, जिसने अपने पापों को दूसरे मनुष्यों से छिपाया और उसने ईश्वर से इनकार करके उन पापों से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा साधन यही समझा कि उन पापों के एकमात्र साक्षी (ईश्वर) से छुटकारा पा जाय। जिस ईश्वर को वह उन पापों के करते समय न हटा सका उसी को स्वीकार करने के कारण उसकी अन्तरात्मा में घुटन हो रही होगी। संभवतः वह एक अत्याचारी रहा होगा, जिसने अपने भाइयों की आधी आत्मा चुरा ली होगी, उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण किया होगा।

उस अत्याचारी ने ईश्वर के स्थान पर पाशविक शक्ति स्थापित करके उसकी पूजा करनी शुरू कर दी होगी। उसने कर्तव्यों के स्थान पर सत्ता हथियाने और मनुष्यों के अधिकारों का हनन करने का प्रयत्न किया होगा। उस नास्तिक के बाद ही शताब्दी के अनन्तर शताब्दियों में कोई कोई ऐसे लोग पैदा होते रहे जो अपने कुतर्कों से नास्तिकता को अपनाते रहे। लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। बहुत समय नहीं हुआ, जबकि मनुष्यों की एक ऐसी भीड़ आई जो ईश्वर के सम्बन्ध में असत्य एवं मूर्खतापूर्ण धारणाओं से खीझकर नास्तिक बन गयी क्योंकि उन्होंने देखा कि कुछ अत्याचारी एवं शक्तिशाली जनों ने ईश्वर के विषय में वे धारणाएें अपने स्वार्थ के लिए स्थिर की हैं। परन्तु इस प्रकार के नास्तिक कुछ काल तक ही रह सके क्योंकि उनके मन में दिव्य शक्ति को पाने की ऐसी तीव्र इच्छा थी कि वे तर्क शक्ति या प्रकृति देवी को ही ईश्वर के रूप में स्वीकार करने लगे।

आज ऐसे लोग विद्यमान हैं, जो सब धर्मों को इसीलिए अस्वीकार करते हैं कि वे देखते हैं कि उनके विश्वासों में भ्रष्-

टाचार घुसा हुआ है, उनमें दैवी पवित्रता दिखाई नहीं देती। ऐसे लोगों में से एक भी अपने आपको नास्तिक कहने का साहस नहीं करता। ऐसे महन्त पुजारी भी हैं जो ईश्वर को अपनी वासनाओं की पूर्ति का साधन बनाने का प्रयत्न करते हैं। मन्दिरों व मठों के लाखों रुपयों को वे ईश्वर के नाम पर एकत्र करते हैं, और फिर उन्हें अपने भोगों का साधन बनाते हैं। ऐसे अत्याचारी भी हैं जो ईश्वर को अपने अत्याचारों के लिए शक्ति प्रदान करने वाला और अपना संरक्षक मानते हैं। लेकिन हमें विचार करना है कि यदि सूर्य का प्रकाश कभी धुन्ध के कारण हमारे पास मन्द पहुँचता है तो क्या उसके कारण हम सूर्य की सत्ता से ही इनकार कर दें ? क्या हम कहदें कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ को प्रकाशित करके हमें उन पदार्थों को देखने की शक्ति वाला सूर्य है ही नहीं ? हम देखते हैं कि कुछ लोग स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके उसे अराजकता में परिवर्तित कर देते हैं, तो क्या इसी से हमें स्वतन्त्रता को धिक्कारना चाहिए ? मनुष्य के भ्रष्टाचारों, असत्याचरणों और पापों के बीच में से भी, उनके आवरण को काट कर ईश्वर की अमर प्रकाश किरणें हमारे पास पहुँच जाती हैं। असत्य और भ्रष्टाचार, दुष्टता और पापाचार मिट जाते हैं, ईश्वर की सत्ता विद्यमान रहती है और मनुष्य विद्यमान रहता है, जो कि धरती पर ईश्वर की ही प्रतिकृति या मूर्ति है। ज्यों-ज्यों लोग दासता, कष्ट और निर्धनता पर विजय पाकर क्रम-क्रम से आत्मचेतना, शक्ति और स्वतन्त्रता प्राप्त करते जाते हैं, त्यों-त्यों धर्म के भ्रष्टाचार युक्त रीति-रिवाजों से छुटकारा पाकर मनुष्य, ईश्वर के सत्य स्वरूप के दर्शन पाता है। तब मनुष्य द्वारा ईश्वर की उपासना अधिक पवित्रता, मनोनियोग और अधिक बुद्धिसंगतता से युक्त हो जाती है।

यह ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं और नहीं आपसे उसकी पूजा करने के लिए कहना है; क्योंकि आप उसकी पूजा तो करते ही हैं; भले ही उसके(ईश्वर के)नाम पर न करते हों। जितनी बार आपको अपने जीवन की अनुभूति होती है, और अपने चारों ओर प्राणियों के जीवन की अनुभूति होती है उतनी बार आप उसकी सत्ता को स्वीकार करते है, उतनी ही बार आप उसकी वन्दना भी करते हैं। परन्तु उस ईश्वर की आप किस तरह उपासना करें—यह आपको निर्देश करना या उस निर्देश के पालन में किसी प्रकार की एकाध भूल होने पर आपकी निन्दा करना या आपको अपराधी समझना ऐसा ही गलत है, जैसा कि ईश्वर की सत्ता से इनकार करना। उपासना में तनिक-सी त्रुटि होने पर उपासक को दोषी समझना—ईश्वर को उसकी रचना से पृथक् करने का प्रयत्न करना है, जिसे भेद-भावना कहते हैं। इस धरती पर आप अपनी सत्ता की एक कालावधि व्यतीत करने के लिए आए हैं। इस कालावधि या जीवन में एक तरफ तो ऐसे लोग आपको मिलेंगे जो कहेंगे—"ठीक है, ईश्वर की सत्ता है, पर आप उसके लिऐ यही कर सकते हैं कि आप उसकी सत्ता को स्वीकार करें और उसकी पूजा करें। कोई भी ईश्वर और मनुष्य के संबन्ध को न तो समझ सकता है और न समझा ही सकता है। ईश्वर और जीवन का सम्बन्ध तो एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर आपकी आत्मा ईश्वर से ही तर्क कर सकती है। आप उस पर चिन्तन करें; परन्तु अपने विश्वासों को अपने लोगों पर ठूँसने का प्रयत्न न करें, न ही उनकी इस धरती के पदार्थों के बारे में अर्थात् भौतिक जीवन में अमल में लाने का प्रयत्न ही करें। राजनीति अलग है, धर्म अलग है, दोनों को मिलाने का प्रयत्न मत कीजिये। स्वर्गीय या दैवी विषयों को स्थापित आध्यात्मिक सत्ता के हवाले

कर दीजिये चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो। आप अपने लिये इतना अधिकार सुरक्षित रखें कि यदि कोई धर्म-सम्बन्धी विधि विधान आपके उद्देश्य के विपरीत हों तो आप उन्हें छोड़ सकें। प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के विषय में अलग-अलग प्रकार से सोचने दें। आपके लिये तो इतना ही काफी है कि भौतिक पदार्थों में और जीवन में आपको अपनी स्थिति का ज्ञान हो जाय। चाहे आप पदार्थवादी (भौतिकतावादी) हों या अध्यात्मवादी-कुछ भी क्यों न हों। क्या आप स्वाधीनता में विश्वास रखते हैं; क्या आप बहुजन का हित चाहते हैं ? क्या आप संसार-भर के मनुष्यों को मतदान का अधिकार देना चाहते हैं। इन कामनाओं की पूर्ति के लिए आप संगठित हो जाइए। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि आप सब धर्मों या परलोक सम्बन्धी बातों में भी परस्पर एक मत हों, क्योंकि राजनीति और धर्म अलग-अलग हैं।"

दूसरी ओर आपको इसके विपरीत विचारों वाले लोग मिलेंगे, जो बताएँगे—

"ईश्वर है; परन्तु वह इतना महान् है, इतना ऊँचा है, सांसारिक रचनाओं से इतना गरिमान है कि मानव अपनी रचनाओं से या प्रयत्नों से उसको प्राप्त नहीं कर सकता। धरती मिट्टी है, जीवन क्षण भंगुर है, संसार से अपने मन में जहाँ तक हो सके विराग धारण करो, इस पर जो एक क्षण भी व्यय करोगे, वह व्यर्थ चला जाएगा। आत्मा के अमर जीवन की तुलना में संसार का भौतिकतामय जीवन क्या महत्व रखता है ? आत्मा के बारे में जानो, परलोक सुधारने का प्रयत्न करो। इसका महत्व ही क्या है कि आप इस लोक में किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं ? आपको एक दिन

अवश्य मर जाना है और परमात्मा आपके विचारों के अनुसार ही आपका न्याय करेगा। क्या आप दुःखी हैं ? परमेश्वर को धन्यवाद दीजिये, जिसने इन संकटों को आपकी परीक्षा के लिए भेजा। संकटकालीन अवस्था आपका परीक्षाकाल है। इस धरती पर आपको आजीवन बन्दी के रूप में रखा जाएगा। इनको सहन करो और इनसे ऊपर उठो। ग़रीबी के कष्टों में आप ईश्वर की ओर मुँह मोड़ो, उसकी उपासना से अपने आपको पवित्र करो, सांसारिक पदार्थों के प्रति विरक्ति का भाव मन में लाओ। भविष्य में विश्वास रखो, उस प्रभु की उपासना से तुम भविष्य में महत् फल प्राप्त करोगे।"

ऊपर बताये गये दो प्रकार के मनुष्यों में से पहला तो ईश्वर से प्रेम नहीं करता और दूसरा उसको जानता ही नहीं।

सबसे पहले तो हमें यह कहना है कि मनुष्य एक है। आप उसके दो भाग नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आप अपने संपर्क में आने वाले मनुष्य को अपने विचारों से सहमत करें कि उसका जन्म कैसे हुआ और उसका भविष्य क्या है और इस धरती पर उसके जीवन व्यतीत करने के क्या नियम हैं। धर्म ही संसार पर शासन करते हैं। हिन्दुओं ने मानव समाज को चार वर्गों में बाँटकर समाज को चलाया। ब्राह्मणों का कर्तव्य बताया गया बुद्धि का कार्य, क्षत्रियों का कर्तव्य बताया गया युद्ध करना और शासन चलाना, वैश्यों का कर्तव्य बताया गया व्यापार करना और शूद्रों का कार्य केवल सेवा करना। इस प्रकार हिन्दुओं ने मानव का वर्गीकरण करके शूद्रों या दासों की एक श्रेणी ही खड़ी कर दी। महात्मा ईसा ने अपने उपदेशों में बताया कि सब मनुष्य परमात्मा के पुत्र हैं; परन्तु उसके उपदेश के बाद भी शताब्दियों तक यूरोप में गुलामी की प्रथा चलती रही। इस प्रकार धर्म ने जहाँ समाज

को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया, वहाँ उसमें दोष भी आ गए; परन्तु यदि आप धर्म का आश्रय छोड़ देते हैं, तो सीधे अराजकता की ओर बढ़ते हैं। क्योंकि धर्म ही वह शान्ति है, जो अराजकता की प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करती हुई समाज को आगे ले जाती है। धर्म को एक ओर रखने का ही परिणाम है कि व्यापार में, दुर्बल का दमन और शोषण आरम्भ होता है। राजनीति में, दूसरों की स्वाधीनता छीनी जाती है। राजनीति में, उन लोगों के मूल्य पर, जो दुर्बल हैं, जिनके पास न तो साधन है, न समय, न उन्हें अपने उचित अधिकारों के प्रयोग का ज्ञान है—उनके मूल्य पर व्यक्ति अपने अहंकार का पोषण करते और व्यक्तिगत उन्नति करते हैं। आचारनीति में, दुर्बलों को गिराकर अपने अहंकार को ऊँचा उठाया जाता है। यदि हम संगठित शक्ति के द्वारा समाज को ऊँचा उठाना चाहते हैं, तो उसके लिये हमें उस भ्रातृभाव की स्थापना करनी होगी, जिसके मार्गदर्शक सिद्धान्त एक होंगे, जिनके विश्वास एक होंगे, जो एक ही लक्ष्य के लिए शपथ ग्रहण करेंगे। इसके लिए हमें अपने भाइयों को शिक्षित करना होगा। उसके बिना हम लक्ष्य के गुण और उसकी उच्चता अपने भाइयों को न सिखला सकेंगे, उसके बिना हम उन्हें मनुष्य का जन्म, उसके कार्य और उसके जीवन के लक्ष्य पर अपने साथ एकमत न कर सकेंगे। हमें समान शिक्षा की आवश्यकता है, हमें समान कार्यप्रणाली की आवश्यकता है, हमें समान विश्वास और कर्तव्य की आवश्यकता है। इसके लिए धर्म परमोच्च साधन है और धर्म के लिए ईश्वर-विश्वास की आवश्यकता है।

हम व्यस्क मताधिकार की बात करते हैं। निःसंदेह यह परम वरणीय वस्तु है। हरएक व्यक्ति को अपने विचार के अनुसार मत देने का अधिकार है। यही एक वैधानिक साधन

है, जिसके द्वारा कोई देश अपने आप पर शासन कर सकता है, परन्तु वयस्क मताधिकार देश के लिए उपयुक्त तभी हो सकता है, जब देश की सम्पूर्ण जनता में समान विश्वास हो; नहीं तो जो शासन स्थापित होगा, वह उन लोगों का होगा जो संख्या में अधिक हैं, शक्तिशाली हैं, और बाकी सबको दबाकर, कुचलकर शासन करते हैं। धर्म विहीन देश में जहाँ कहीं क्रान्ति होगी, वहाँ स्वार्थी तत्व ऊपर आ जायगा और जन साधारण के अधिकारों को पनपने का अवसर न मिलेगा।

जो केवल स्वर्ग और परलोक की ही बातें करते हैं, और उसे इस धरती से अलग करते हैं, वे भी भूल करते हैं। इहलोक और परलोक का वही सम्बन्ध है, जो यात्रा और यात्रा की पूर्णता का है। वास्तव में वे एक ही हैं। कोरे परलोकवादियों से स्पष्ट कह दीजिए कि "हमें मत सिखाइये कि धरती मिट्टी है (अर्थात् "संसार नाशवान है") उनसे कहिये कि संसार परमेश्वर की रचना है। संसार की रचना ईश्वर ने इसलिए की है कि इसके द्वारा जीवन को श्रेष्ठ रूप में बिताकर जीव परमेश्वर को प्राप्त कर सके। यह धरती लालसाओं और विषय-भोगों का नरक नहीं है। यह तो वह स्थान है जहाँ परमेश्वर ने मनुष्य को आत्मसुधार के लिए प्रयत्न करने भेजा है। वह आत्मसुधार, मनुष्य अपने कर्म द्वारा—सत्कर्म द्वारा कर सकता है। परमेश्वर ने मनुष्य को याचना और प्रार्थना के लिए नहीं; बल्कि कर्म करने के लिए भेजा है। उसने मनुष्य को अपनी ही प्रतिकृति या मूर्ति बनाया है। भगवान् सृष्टा है—उसकी कोई भी रचना विचार से रहित नहीं और कोई भी विचार रचना से रहित नहीं। फिर मनुष्य केवल विचार से ही भगवान् को कैसे प्रसन्न कर सकता है ? उसे प्रसन्न करना है तो जो श्रेष्ठ विचार आपके मन में आते हैं, उन्हें कार्य रूप में परिणित

कीजिये, तभी आप उसके प्यारे बन सकते हैं। केवल चिन्तन, केवल उपासना, कोरी भक्ति किस काम की ?

यदि आप हृदय से ईश्वर को भुला देंगे तो आपकी जो उन्नति होगी, वह स्वार्थ भावना की, व्यक्ति की वासनाओं की उन्नति भले ही हो, समष्टि की अर्थात् सबकी सामूहिक उन्नति कदापि नहीं हो सकती। गाँधी जी पचास वर्ष तक यही उपदेश करते रहे थे। परन्तु प्रगति में 'गति' जो शब्द है, वह स्पष्ट करता है कि उन्नति के लिए चेष्टा पहली शर्त है; बल्कि यों कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि कर्म ही सच्ची उपासना है।

भगवान् ने आपको इस धरती पर भेजा। अब आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप अपनी बुद्धि से उन्हें बुद्धि प्रदान करें, जो आप पर निर्भर हैं, जिनकी उन्नति आपकी उन्नति पर निर्भर है। यदि आप उन्हें अपने समान ही विचारपूर्ण तथा अध्यवसायशील बनाकर स्वतन्त्र कर्ता बना देते हैं तो भगवान् आप पर प्रसन्न नहीं होगा, तो किस पर होगा ? अपने मस्तिष्क की उर्वरता से दूसरों के मस्तिष्क को उर्वर बनाइए, अपने हाथों के कौशल से दूसरों के हाथ कार्य-कुशल बनाइए, बस आप उपासना कर रहे हैं, इसमें किसी को भी संदेह नहीं होना चाहिए। भगवान् ने आपको एकान्त में नष्ट होने से बचाने के लिए आपकी आवश्यकताओं को जन्म दिया है और आपके चारों ओर उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक हाथ बना दिए हैं। क्या वे हाथ अकर्मण्य रहें, इसलिए भगवान् ने उनकी रचना की है ? भगवान् ने आपके चारों ओर यह विस्तृत संसार बनाया है, जिसे आप पदार्थ-जगत या भौतिक जगत कहते हैं। इस संसार को उसने सौन्दर्य दिया है, जीवन से युक्त बनाया है, यह सौन्दर्य और जीवन प्रत्येक स्थल पर अपने

सृष्टा का निदर्शक है, उसी का प्रतीक हैं। प्रत्येक सौन्दर्य और प्रत्येक जीवन अपने सृष्टा की मुँह बोलती तस्वीर है। पर आवश्यकता इस बात की है कि उस पदार्थ को आपके हाथ लगें। जब तक एक पाषाण खंड को आपके हाथ न लगेंगे, जब तक आपकी विचार-शक्ति और कार्य-शक्ति एक होकर उस पाषाण खंड पर श्रम न करेंगी, तब तक उसमें से भगवान् का रूप प्रकट न होगा। जो बात एक पाषाण के लिए सत्य है, वही बात एक राष्ट्र के लिए भी सत्य है।

सांसारिक पदार्थ नाशवान हैं, उनकी उन्नति भी नाशवान् है; परन्तु जिस तरह नदी की एक लहर दूसरी लहर को तरंगित करके आप मिट जाती है, उसी तरह एक नाशवान उन्नत होकर, दूसरों को उन्नत करके नष्ट हो जाता है और पहली रचना से दूसरी अधिक उन्नत बन जाती है, दूसरी से तीसरी और इस प्रकार अस्थिर उन्नति स्थिर उन्नति की जन्मदात्री बन जाती है।

आपका अपने इर्द-गिर्द के मानवों से घनिष्ट सम्बन्ध है। आपका अपने चारों ओर के पदार्थों से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि ऐसा न होता तो भगवान् आपके हृदय में कभी न बुझने वाली सहानुभूति की ज्योति क्यों जगाता ? आपके हृदय में दुखियों के प्रति दया की भावना क्यों बिठाता ? हँसने वालों के साथ आपको हँसने की शक्ति क्यों देता ? जो अपने साथियों को कुचलकर उनके अधिकारों को छीनकर अपने अहं के दैत्य को चढ़ा देते हैं, उनके लिए भगवान् आपके हृदय में क्रोध को क्यों जन्म देता ? सत्य की अनबुझी प्यास वह आपको क्यों देता ? सबके लाभ के विचारों को जो कार्य रूप में परिणित करते हैं, उनकी प्रशंसा की भावना वह आप में क्यों जगाता ? जो सत्य के लिए युद्ध करते हुए, दीनों के त्राण के लिए उद्योग

करते हुए, विजय न पाकर भी सतत संघर्ष करते हुए अपने प्राण निछावर करके शहीद होते हैं, उनके नाम के स्मरण मात्र से सीस झुकाने की कामना वह आप में क्यों भरता ?

उपर्युक्त बात से यह स्पष्ट है कि भगवान् सबकी सामूहिक उन्नति चाहता है। ऐसी दशा में यह कहाँ तक ठीक है कि आप अपने अन्तःकरण की शुद्धियों के लिए अकेले ही एकान्त में जा बैठें और आँखें मूँदकर चिन्तन में लीन हो जाएँ।

सबकी उन्नति, सबका उदय, सबका कल्याण, सबका उत्थान ही उपासना है। वही शुद्धि का कार्य है, वही प्रगति है। अकेला व्यक्ति चाहे कितना ही श्रेष्ठ, कितना ही उन्नत, कितना ही पवित्र क्यों न हो, पर यदि वह सामूहिक हित के कार्यों में योगदान नहीं करता, तो उसे कभी भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। उसमें और एकान्त बन्दीगृह में पड़े एक कैदी में अन्तर ही क्या है ?

जो लोग ईश्वर के लिए गुरु को रिझाना आवश्यक मानते हैं, वे भी मनुष्य के मस्तिष्क और आत्मा को एक कोठरी में बन्द करने का प्रयत्न करते हैं। मनुष्य की इस दुर्बलता का लाभ उठाकर शैवों, शाक्यों, बौद्धों और जैनों के कुछ स्वार्थी महन्तों ने क्या कुछ अनाचार नहीं किया ? एक पोप के शिष्य में और एक अत्याचारी राजा के सेवक में अन्तर ही क्या हो सकता है ?

जहाँ कहीं भी परमात्मा की भावना है, वहाँ स्वतन्त्रता है। जो गुलामी को मिटाने का पक्षपाती है, वह गुरु है। जो अपने शिष्य को अपने विचारों की गुलामी में जकड़ने का प्रयत्न करता है, वह गुरु नहीं हो सकता, शोषक या अत्याचारी भले ही हो। एक ओर वे हैं जो ईश्वर की रचना—मनुष्य—के पाँव पकड़ते हैं, दूसरे वे हैं जो ईश्वर की रचना—मनुष्य—को पाँवों

तले कुचलते हैं। वे दोनों ही ग़लत हैं। एक मनुष्य के प्रति अपना समर्थन कर देने से धर्म, धर्म नहीं रह जाता, वह तो एक पंथ हो जाता है। ईश्वर से सीधा सम्बन्ध रखने में ही वास्तविक धर्म है। इतना अवश्य है कि ईश्वर से अपना सीधा सम्बन्ध और मनुष्यों से अलग या विशेष स्वार्थ सिद्धि के लिए न होना चाहिए।

सच्चा धर्म या विश्वास किसी एक व्यक्ति या किसी संप्रदाय के हित के लिए कभी नहीं हो सकता। सच्चे धर्म या विश्वास का तो स्वरूप ही यह है कि वह सब की हित कामना को जगाये, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को ऐसा स्वरूप प्रदान करे कि जिससे मानव हितों की सभी शाखाओं की सामूहिक और सर्वांगपूर्ण उन्नति हो। मानव का इतिहास विविधतापूर्ण है। काल के कारण उसकी कक्षाओं में अन्तर है। परन्तु मानवता का उच्चतम लक्ष्य सदा ही यह रहा है कि धरती पर स्वर्ग को उतारा जाय, बल्कि धरती को ही स्वर्ग बनाया जाय। मानव की एकता; अर्थात् अभिन्नता की स्थापना ही धरती पर ईश्वर के राज्य की स्थापना है। इसी के द्वारा इस धरती को स्वर्ग बनाया जा सकता है। समय-समय पर मानवता ने इसी के लिए विभिन्न स्थानों और कालों में, विभिन्न रूपों में प्रयत्न किया है। परन्तु सर्वत्र यही एक कथा है, जो बारम्बार दोहराई गई है।

भाइयो ! 'धरती को हम स्वर्ग बनायेंगे, यहाँ ईश्वर का राज्य स्थापित करेंगे' यही हमारा घोष होना चाहिए। अपने विश्वास को या उपासना के मन्त्रों को बार-बार जपने या दोहराने की अपेक्षा बार-बार इस विश्वास को दोहराइये कि हम धरती पर ईश्वरीय राज्य की स्थापना करेंगे। जब हम सच्चे मन से इस वाक्य का उच्चारण करेंगे और इसके लिए

एकनिष्ठ होकर सतत प्रयत्न करेंगे, तो इस धरती पर पराधीनता न होगी, गुलामी न होगी, भेदभाव न होगा, शोषण न होगा, विषमता न होगी।

आपका जन्म क्यों हुआ ? इसलिए कि आप ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जहाँ तक आप में शक्ति है और जितना क्षेत्र ईश्वर ने निर्धारित किया है, उसमें कार्य करते हुए उसकी इच्छा को पूर्ण करें। यदि आप मानवता के भेदभावों को दूर करने के लिए अपनी शक्ति से कार्य नहीं करते, तो आपका एक मानवता में विश्वास और एक ईश्वर में विश्वास वृथा है। यदि मनुष्य की विभिन्न जातियों को आप एक-दूसरे से अलग समझते हैं, तो फिर मानवता की एकता का दम क्यों भरते हैं ? फिर आप मानव की स्वाधीनता में विश्वास क्यों नहीं रखते ? यदि हम एक जाति से दूसरी जाति के बीच की बाधक दीवार को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं करते तो हमारे भातृ-भावना के ऊँचे नारे मिथ्या हैं। जब हम दूसरी जाति के लोगों को अपना भाई समझते हैं, तो हम उन्हें पददलित क्यों होने देते हैं ? पतित क्यों बनने देते हैं ? निन्दनीय जीवन में क्यों पिसने देते हैं ? सारी धरती हमारा कार्यक्षेत्र है इसलिए इसके किसी भी भाग की हमें निन्दा न करनी चाहिए। हमें इसके हर एक अंश को पवित्र समझना चाहिए। हमारे इर्द गिर्द की भौतिक शक्तियाँ हमारे लक्ष्य के लिए सहायक हैं; क्योंकि उनके द्वारा हम अपने लक्ष्य के लिए प्रयत्न कर सकते हैं, श्रम कर सकते हैं। अतएव हमें पदार्थों की निन्दा न करनी चाहिए; बल्कि उनका उचित उपयोग करना चाहिए।

परन्तु ईश्वर के बिना आप यह काम नहीं कर सकते। आपने चारों ओर के पदार्थों को साधन बनाकर विश्वमानवता के उत्थान के लिए प्रयत्न करना ही आपका ईश्वर के प्रति

कर्तव्य है। केवल आपके अधिकारों का ज्ञान करा देने से आपको उद्देश्य मार्ग पर नहीं चलाया जा सकता। उद्देश्य-पथ पर निरन्तर चलाने वाली शक्ति वह ज्ञान है जिसके द्वारा आप विश्वमानवता के उत्थान के लिए प्रयत्नशील होते हैं। ईश्वर के बिना, केवल राजनीतिक शक्ति की उपासना अन्धकारमयी पाशविक और अत्याचारी शक्तियों की उपासना है। अब हमारे लिए यही मार्ग रह जाता है कि या तो हम उस ईश्वरीय कानून की खोज करें जिसे व्यवहार में लाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है या मानव की उन्नति को भाग्य के भरोसे, अवसर के भरोसे या उस मनुष्य के भरोसे छोड़ दें जो अवसर का प्रयोग अपनी कामना के अनुसार करना सबसे अच्छा जानता है।

अतः हमें या तो ईश्वरीय आज्ञा का पालन करना होगा, अथवा मनुष्य की सेवा करनी होगी, चाहे वह एक मनुष्य हो या अधिक। यदि मनुष्य के हृदयों के ऊपर शासन करने वाला परमोच्च ईश्वरीय शासन न होता तो हमें मनुष्यों के—शक्तिशाली मनुष्यों के अत्याचारों तथा त्रासों से कौन बचाता? यदि ईश्वर का पवित्र और अनुल्लंघनीय न्याय न होता तो हम किसके नाम पर अत्याचार और दमन, त्रास और शोषण का विरोध करते ?

ईश्वर के बाद, यदि कोई सर्वोच्च शक्ति है, जिसके आगे भौतिकतावादी, पदार्थवादी और वैज्ञानिक भी झुक-झुक कर नमस्कार करते हैं, तो वह है—तथ्य या वस्तु सत्य। इसका नाम चाहे क्रान्ति (इन्क़लाब) हो या लोकनायक की आज्ञा।

हमारी अकर्मण्यता से हमें झिझोड़कर जगा देने में वह समर्थ है परन्तु उन्हें भी अन्ततः स्वार्थत्याग और बलिदान माँगते हुए ईश्वर का ही वास्ता देना पड़ता है।

क्या हमें अपने विचारों को कार्यों के लिये और कार्यों को

व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये ही प्रयुक्त करना चाहिए ? नहीं, यह तो वास्तव में आत्मप्रवंचना है। ऐसे धोखे में मत आइए। जब तक हम किसी भी कार्य को व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए करने का प्रयत्न करेंगे तब तक हमारे पास यही कुछ रहेगा, जो कुछ प्राप्त है, तब तक हम शब्दों से ही चिपके रहेंगे, कार्यक्षेत्र में हम उतर ही नहीं सकेंगे। संसार के किसी भी भी युगपरिवर्तनकारी कार्य की ओर दृष्टि डालिए, आपकी आँखें खुल जायँगी, कि उनमें से एक भी ऐसा कार्य नहीं था जो व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए आरम्भ किया गया हो। मानवता के हित की दृष्टि से ही संसार का हर एक महान् कार्य संपन्न होता रहा है और मानवता का हित ही ईश्वरीय आज्ञा है। ईश्वर को भुलाकर आप आज्ञा दे सकते हैं; पर प्रोत्साहित नहीं कर सकते। आप अत्याचारी शासक हो सकते हैं परन्तु उपदेष्टा या नेता नहीं बन सकते।

'ईश्वर की इच्छा-ईश्वर की इच्छा' जनसाधारण के मुँह से यही सुनाई पड़ता रहता है। इसका अर्थ यह है कि जनसाधारण ईश्वर की इच्छा की पूर्ति का विरोध नहीं करता। जब आप किसी भी महान् कार्य को—किसी भी ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण करने के लिए सबको—आस-पास के मनुष्यों को अपने साथ लेकर चलते हैं तो आपका वह कार्य अवश्यमेव पूर्ण होकर रहता है। आप देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण होकर देश की सेवा करना चाहते हैं, तो अवश्य कीजिए। परन्तु यह मत समझिए कि आप ईश्वर को भुलाकर उसे अधिक अच्छी तरह से निभा सकेंगे। धर्म भावना कभी लुप्त नहीं हुई। वह सदा विद्यमान रही है, अनेक भेदभावों के बीच भी वह विद्यमान रही है। महान-से-महान् संकटों में भी वह नष्ट नहीं हुई। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हमने उसे तुच्छ समझकर उसकी

अवज्ञा करनी शुरू कर दी है। कुछ लोगों ने अपने आप को धर्म के विरुद्ध घोषित करने का अभिनय करना शुरू किया है।

शिक्षितों के छल से जनता उतनी ही तंग आ चुकी है, जितनी कि पोप-महन्तों के पाखंड से वह दुखी हो चुकी थी। दोनों प्रकार की वंचनाओं से जनता इतनी तंग आ चुकी है कि उसने दोनों पर ही विश्वास करना छोड़ दिया है। उसने दोनों की असत्य बातों के साथ ही सत्य बातों को भी अविश्वसनीय मानना शुरू कर दिया है।

इसलिए भाइयो! ईश्वर को सम्मुख रखो, उसकी आज्ञा का पालन करो, उसके नाम पर उपदेश करो। ईश्वर का नाम लेने पर कुछ शिक्षित तुम पर हँसेंगे ; पर उनकी परवाह मत करो। उनसे पूछो कि उन्होंने देश के लिये क्या किया है ? मानवता के लिए क्या किया है ? बस वे स्वयं ही झेंप जाएँगे पुजारी, पादरी और मुल्ला भी शायद तुम्हारी हँसी उड़ाएँगे, उनकी भी परवाह मत करो। उन्हें ईश्वर के दर्शन शायद ही कभी हों। उनसे कह दीजिये "मुझे अपने और ईश्वर के बीच में किसी भी मध्यस्थ या दलाल की आवश्यकता नहीं।" उस ईश्वर पर विश्वास रखिये, वही सबका पिता है, वही बुद्धि का आधार है, वही प्रेम का आश्रम है, वही सबका स्रष्टा है, वही मानवता का उपदेष्य है, वही गुरुओं का गुरु है। ऐसा करने पर सब लोग आपके साथ हो जाएँगे और आपकी विजय होगी।

नियम अथवा कानून के प्रति

आप जीवित हैं, इसलिए आपके जीवन का कोई नियम या कानून आवश्यक होना है। कानून या नियम के बिना कोई जीवन नहीं हो सकता। किसी भी पदार्थ या व्यक्ति की सत्ता किन्हीं दशाओं पर आधारित है, और वह सत्ता किसी नियम या कानून के आधीन है। खनिजों में संहति या परमाणु संगठन का नियम शासन करता है, वनस्पतियों में विकास या परिवर्धन का नियम शासन करता है, सितारों और नक्षत्रों पर गति का नियम शासन करता है। इसी प्रकार कोई-न-कोई नियम या कानून अवश्य है, जो आपके जीवन पर शासन करता और उसे संचालित करता है। वह कानून जो मनुष्यों पर शासन करता है, उन नियमों या कानूनों से अवश्व ही श्रेष्ठतर और महत्तर है, जो खनिजों वनस्पतियों या सितारों पर शासन करते करते हैं; क्योंकि मनुष्य स्वयं इनसे और संसार के सभी पदार्थों और प्राणियों से श्रेष्ठतर और महत्तर है। तब अपने नियम या कानून के अनुसार उन्नत होना, कार्य करना, जीवन व्यतीत करना आपका सर्वप्रथम ही नहीं अपितु एकमात्र कर्तव्य है।

ईश्वर ने आपको जीवन प्रदान किया है। इसीलिये नियम या कानून भी ईश्वर ने ही प्रदान किया है। मनुष्य जाति को नियम या कानून प्रदान करने वाला एकमात्र ईश्वर है। केवल-मात्र ईश्वर का नियम या कानून ही ऐसा है, जिसका पालन करना मनुष्य का कर्तव्य है; बल्कि जिसके पालन के लिए

मनुष्य बाध्य है। मनुष्य के बनाये नियम या कानून तब तक ही अच्छे हैं, जब तक वे ईश्वरीय नियम या कानून से मेल खाते हैं, या उनके अनुकूल हैं। यदि मनुष्यकृत विधान ईश्वरीय नियम की व्याख्या करते हैं या उसे व्यवहार में लाने का ढंग बताते हैं, तब तो वे ठीक हैं; पर जब वे ईश्वरीय नियमों का निषेध करते या उनके विरुद्ध चलते हैं, तब वे कानून या नियम नहीं रह जाते। तब आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप उनका विरोध करें। तब आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि मनुष्यकृत उन विधानों और नियमों को नष्ट करदें। जो ईश्वर के नियमों का सबसे अच्छा व्याख्याता हो और जो मानवीय अवसरों पर उनके प्रयोग करने का आपको निर्देश दे, वही आपका मुखिया या नेता कहलाने का अधिकारी है। उसे आप प्यार कीजिए, उसकी आज्ञा का पालन कीजिए, उसके पीछे आप चलिये; परन्तु ईश्वर के सिवा आप किसी को अपना स्वामी मत स्वीकार करिये। क्योंकि जब आप किसी मनुष्य को अपनी आत्मा का स्वामी मानते हैं, तब आप ईश्वर के प्रति विद्रोह करते हैं।

जीवन के विधानों या नियमों के ज्ञान में ही, ईश्वरीय नियमों के ज्ञान में ही सदाचार के नियम निहित हैं। आपके कर्मों के, कर्तव्यों के, उत्तरदायित्व के नियमों में ही यह बात आ जाती है कि आप उन नियमों या कानूनों का विरोध करें, जो किसी एक स्वेच्छाचारी ने या स्वेच्छाचारियों के किसी समूह ने आप पर जबर्दस्ती थोप दिये हैं। इस कानून के ज्ञान को जाने बिना आप यदि मनुष्य के अधिकारों की बात करें, तो वह व्यर्थ है। मनुष्य के सभी अधिकारों का मूल-स्रोत विधान या कानून में है और प्रत्येक विधान या कानून का मूल स्रोत ईश्वरीय नियमों में है। जब तक आप उन नियमों को अपने हृदय में

जागृत नहीं करते, तब तक आप अत्याचारी या गुलाम हैं। यदि आप शक्तिशाली हैं, तो आप अत्याचारी हैं और यदि आप दुर्बल हैं, तो आप गुलाम हैं। अतः यदि आप मनुष्य बनना चाहते हैं, तो आपको उन नियमों और कानूनों का ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना होगा, जो मनुष्य स्वभाव को हिंस्र पशुओं, पौधों, खनिज धातुओं आदि से पृथक करके बतलाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि आप उन्हें जान कैसे सकते हैं ?

यही वह प्रश्न है जिसे मानवता ने उन लोगों के सामने सदा ही प्रस्तुत किया है, जिन्होंने 'कर्तव्य' का नाम लिया है। परन्तु इस प्रश्न के उत्तर आज तक जो दिये गये हैं, वे एक दूसरे से भिन्न हैं।

कुछ लोगों ने तो इस प्रश्न का उत्तर यह कहकर दिया है— "यह वह पवित्र पुस्तक है जिसमें मानव के सब नैतिक अर्थात् आचार सम्बन्धी नियमों का व्याख्यान है।" दूसरों ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है— "प्रत्येक मनुष्य को अपने हृदय से प्रश्न करने दो। उसे अपने हृदय में ही अच्छे और बुरे की परिभाषा मिल जाएगी।" कुछ अन्य व्यक्तियों का कहना है— "व्यक्ति का निर्णय ठीक नहीं। इस विषय में जनसाधारण का मत ले लो, जहाँ मानवता किसी विश्वास पर एक मत होती है, वही विश्वास सत्य है।"

ऊपर के सब उत्तर अशुद्ध हैं, ग़लत हैं। इन सब उत्तरों की असत्यता इतिहास ने पूर्णतया स्पष्ट कर दी है। किसी एक पवित्र पुस्तक में ही उक्त प्रश्न का उत्तर मिल जाता तो मानव निरन्तर ही अपने विश्वास को एक ग्रन्थ से दूसरे ग्रन्थ में क्यों स्थिर करता ? क्यों एक पुस्तक को छोड़कर लोग दूसरी पुस्तक पर ईमान लाते ?

जो लोग केवल एक व्यक्ति या मनुष्य के अन्तःकरण को

ही सत्य-असत्य या अच्छे-बुरे के विवेक में प्रमाण मानते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी धर्म, चाहे वह कितना ही पवित्र रहा हो, कभी भी विरोधियों से रहित नहीं रहा। पवित्र से पवित्र समझे जाने वाले धर्म के भी वरोधी कुछ-न-कुछ लोग सदा ही रहे हैं। और वे विरोधी अपनी आत्मा की आवाज पर उस प्रचलित धर्म के विरुद्ध अपना बलिदान तक करने को तैयार रहते आये हैं।

ईसाइयों मे रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट हुए। आज प्रोटेस्टेंटों की ही हज़ारों शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं। इसी प्रकार अन्य धर्मावलम्बी भी शाखाओं व उपशाखाओं में विभाजित हैं। ये अलग-अलग मत और मज़हब न केवल एक-दूसरे का विरोध ही करते रहे; अपितु एक दूसरे का खून बहाने को भी तैयार होते रहे। फिर व्यक्ति की अन्तरात्मा कैसे प्रमाण हो सकती है ?

जो मानवता के समान्य विश्वासों को ही सत्य-असत्य के विवेचन में प्रमाण मानते हैं, उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि सभी महान विचार, जिन्होंने मानव की प्रगति में योग दिया, जनसाधारण के विश्वासों के विरोध से ही आरम्भ हुए थे। उनके उपदेष्टा व्यक्ति थे, जिन्हें मानवता ने निन्दित बताया, उन पर अभियोग लगाया और उन्हें सूली पर चढ़ा दिया।

ग्रन्थ पवित्र हैं व्यक्ति की अन्तरात्मा पवित्र है, जनसाधारण के विचार पवित्र हैं; परन्तु जो इन पर तर्क करने या इनके सत्यासत्य पर विचार करने का निषेध करता है; वह वास्तव में सत्य का ही निषेध करता है। जो इनमें से किसी एक पर आश्रित होकर दूसरे का निषेध करता है, वह सत्य का अप्रलाप करता है। जो भूल सामान्यतः अब तक होती रही है, वह यह है कि इनमें से केवल एक का आश्रय लेकर ही सत्य की खोज करने का प्रयत्न होता रहा है। व्यक्ति की अन्तरात्मा को एकमात्र प्रमाण

मानने से अराजकता फैलती है और जनसाधारण के विश्वास को एकमात्र प्रमाण मानने से किसी विशेष नए ढंग के अवसर पर जनता को उस नवीन कार्य के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता। इससे स्वतन्त्रता का नाश और अत्याचार का जन्म होता है।

उपर्युक्त सभी नियमों को एक साथ लेकर चलने से ही हम ईश्वरीय न्याय के ज्ञान को पा सकते हैं। पर इन बातों पर ध्यान न रखने से ही कुछ राजनीतिक दल ग़लत आधार पर संगठित किये गये हैं। कुछ राजनीतिक दल तो केवल व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए बनाये गये हैं, वे समाज को दृष्टि से ओझल कर देते हैं। कुछ दूसरे दल समाज को इतनी प्रमुखता दे देते हैं कि व्यक्ति के विचारों और क्रियाशीलता को कुचल डालते हैं। मात्र व्यक्ति को प्रधानता देने से विषमता पैदा होती है और बहुसंख्या का दमन होता है। फ्रांस और इंग्लैंड में ऐसा ही हुआ। दूसरी ओर मात्र समाज को ही सब कुछ मानकर चलने से कम्यूनिज्म ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा क्रियाशीलता को कुचलने में कुछ कसर नहीं छोड़ी। उसने व्यक्ति की योग्यता और प्रतिभा को कुंठित करके रख दिया।

इसी प्रकार कुछ संस्थायाएँ केवल व्यक्ति के अधिकारों के आधार पर स्थापित हुईं, और उन्होंने असीमित प्रतियोगिता को बढ़ावा देकर आर्थिक व्यवस्था को व्यवस्थित करने के नाम पर अव्यवस्थित कर डाला। जबकि समाजवादियों ने समाज को ही सब कुछ मानकर व्यक्तियों पर अनेक अत्याचार किये।

परमात्मा ने जहाँ आपको अपना अन्त:करण और उसमें विचार शक्ति दी है, वहाँ आपको जनसाधारण के सामान्य विचार भी दिये हैं। ये दो पंख हैं, जिनके सहारे उड़कर आप

ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। एक भी पंख टूटने से आप उड़ नहीं सकते और ईश्वरीय नियम तक नहीं पहुँच सकते। आप अपने आप को सारे संसार से काटकर अलग क्यों कर लेना चाहते हैं ? अथवा आप सारे संसार को अपने अन्दर क्यों निगल लेना चाहते हैं; आप व्यक्ति के विचारों का गला क्यों घोटना चाहते हैं, या आप समाज के मत को उपेक्षणीय क्यों मानते हैं ? दोनों के समन्वय से ही मनुष्य ईश्वरीय नियम तक पहुँचता है। जब अपकी आत्मा की आवाज़ का जनसाधारण द्वारा पूर्ण समर्थन किया जाता है, तब वहीं आप परमेश्वर के दर्शन करते हैं। उस समय सत्य आपकी मुट्ठी में आ जाता है। आत्मा की आवाज़ और खलक की आवाज़ एक दूसरे का परीक्षण करके उसे जब समर्पित करती हैं, तो ईश्वरीय नियम प्रकट हो जाता है।

यदि आपके कर्तव्य केवल निषेधात्मक (negative) ही होते, यदि यही कहा जाता कि 'पाप न करो, बुरे काम मत करो, अपने भाइयों—मनुष्यों को हानि मत पहुँचाओ' तब तो शायद आपकी अन्तरात्मा की आवाज़ आपके मार्गदर्शन के लिये काफी होती। परन्तु आपके कर्तव्यों की इतिश्री निषेधों में ही नहीं हैं। आप सत्कर्म करने के लिए पैदा हुए हैं। जब भी कभी और जितनी बार भी आप नियम या कानून के विरुद्ध कार्य करते हैं, तब ही और इतनी ही बार आपके अन्दर कुछ ऐसी हलचल होती है, जो आपको दोष देती है, आपको अपराधी बताती है। वह ऐसी आवाज़ है, जिसे आप दूसरों से छिपा सकते हैं; परन्तु अपने आपसे उसे नहीं छिपा सकते। आपके सबसे अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य विधेयात्मक (Positive) हैं, क्रियात्मक हैं। यह कहना काफ़ी नहीं कि 'ऐसा मत करो'। कार्य करना आवश्यक है। 'यह करो' यह

भी कहना नितान्त आवश्यक है। यह पर्याप्त नहीं कि आप किसी के साथ बुराई नहीं करते बल्कि यह आवश्यक है कि आप किसी की भलाई करें। प्राचीनकाल से अब तक सदाचार को प्रायः निषेधात्मक रूप से प्रकट किया जाता रहा है। धर्म और कानून के व्याख्याता कहते रहे हैं—'हिंसा मत करो, चोरी मत करो।' बहुत ही कम, शायद किसी ने भी यह नहीं कहा कि मनुष्य को अपने अन्य मानव भाइयों के प्रति कर्तव्य अवश्य पूरा करना चाहिए अथवा किस प्रकार मनुष्य को दूसरों की भलाई करके ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण करना चाहिए। वास्तव में सदाचरण इसी का नाम है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए सत्—श्रेष्ठ आचरण—कार्य करे। कोई भी व्यक्ति केवल अपने अन्तःकरण की आवाज़ मात्र पर यह काम नहीं कर सकता। क्योंकि मनुष्य का अन्तः करण उसको शिक्षा के अनुसार ही आवाज़ देता है, उसकी आदतों के अनुसार आवाज़ देता है, उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार आवाज़ देता है, उसकी कामनाओं के अनुसार आवाज़ देता है। एक जंगली की आत्मा एक सभ्य नागरिक की आत्मा से भिन्न आवाज़ देती है। एक स्वतन्त्र मनुष्य की आत्मा उसके लिए जिन कर्तव्यों की याद दिलाती है, एक गुलाम की आत्मा उसकी परछाईं को भी नहीं पकड़ती। एक मज़दूर से पूछो, जिसके सदाचार का शिक्षक एक बुरा गुरू था, और जिसे कोई पुस्तक पढ़ने का अवसर ही नहीं मिला, वह आपको बताएगा कि उसके कर्तव्य हैं, खूब मेहनत से मजदूरी करना, जिससे वह अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए मजदूरी कमा सके, जो भी शासन के कानून हों, उनके आगे सिर झुकाना, चाहे वे कानून कैसे ही हों, और किसी का बुरा न करना। क्या आप उसके आगे उसके देश के प्रति कर्तव्यों और मानवता के प्रति कर्तव्यों का वर्णन करेंगे ? क्या

आप उससे यह कहेंगे— "तुम अपने साथी मनुष्यों का बुरा करते हो, जब तुम उनसे कम मजदूरी लेकर काम करने के लिए तैयार हो जाते हो और तुम ईश्वर के प्रति तथा अपने अन्तः-करण के प्रति अपराध करते हो जबकि तुम अन्यायपूर्ण कानूनों के आगे सिर झुका देते हो।" वह ऐसे उत्तर देगा कि जिससे प्रकट होगा कि वह इन बातों को नहीं समझता।

अब आप एक क्लर्क से सवाल पूछिये, जिसे कुछ अच्छी परिस्थितियों में, कुछ अच्छे संपर्क के कारण, कुछ शिक्षित लोगों के संसर्ग से सचाई का थोड़ा ज्ञान मिला है, वह आपको बतायेगा कि देश में आर्थिक विषमता है, और उसके साथी अनेकों व्यक्ति बेकारी के शिकार हैं, और उन्हें आर्थिक दुश्चिन्ताओं तथा नैतिक दुरवस्थाओं में गुजारा करना पड़ता है। वह अनुभव करता है कि वह उन अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करे, जिन्होंने मनुष्य-मनुष्य के जीवन में इतना भयंकर अन्तर कर रखा है।

ऊपर के दो उदाहरणों में आत्मा की आवाज में अन्तर क्यों है ? एक मजदूर और एक क्लर्क की आत्मा की आवाज एक जैसी न होने का क्या कारण है ? यद्यपि वे एक ही समय में एक ही देश के निवासी हैं। क्या कारण है कि एक ही मत के अवलम्बन करने वाले दस आदमियों की दस विभिन्न रायें होती हैं ? विश्वास को कार्य रूप में परिणित करने के वे दस अलग-अलग तरीके क्यों बतलाते हैं ?

इससे स्पष्ट है कि सभी विषयों में, 'आत्मा की आवाज' पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बिना किसी अन्य साधन के हमारा अन्तःकरण हमें कानून का ज्ञान नहीं करा सकता। अन्तःकरण तो हमें यही सिखा सकता है कि कानून विद्यमान हैं। वह हमारे कर्तव्यों का विश्लेषण नहीं कर सकता,

जिनका निर्देश वह कानून करता है। यही कारण है कि बलिदान की भावना कभी भी मानव जाति से लुप्त नहीं हो सकी, चाहे कितना ही अहंकार भाव रहा हो।

अन्तःकरण के लिए किसी अन्य निर्देशक की आवश्यकता है, किसी ऐसे प्रकाश की आवश्यकता है, जो इर्द-गिर्द के अंधकार को छिन्न-भिन्न कर दे। उसे किसी नियम की आवश्यकता है, जो उसके निर्णयों का समर्थन करे और उसकी प्रवृत्तियों को ठीक रास्ते पर चलायें। यह नियन्ता व्यक्ति की बुद्धि और मानवता है।

भगवान् ने आपको बुद्धि इसलिए दी है कि आप उसके कानून या नियम को समझें। आजकल ग़रीबी, जो कि सदियों की भूलों के कारण पनपी है, आपको उस कानून का ज्ञान नहीं होने देती ; क्योंकि धनी और ऊँचे वर्ग के लोग नहीं चाहते कि जनसाधारण को उसका ज्ञान हो। इसलिए आपका प्रथम कर्तव्य यह है कि आपके ज्ञान के मार्ग में जो बाधाएँ आएँ उन्हें आप दूर हटा दें परन्तु चाहे वे बाधाऐं हटा भी दी जाएँ, तो भी आपकी बुद्धि ईश्वरीय कानून का ज्ञान कराने में समर्थ न हो सकेगी, जब तक कि उसे मानवता की सामान्य बुद्धि स्वीकार न कर ले। आपका जीवन छोटा है, आपकी व्यक्तिगत योग्यताएँ दुर्बल हैं, वे किसी सहारे की आवश्यकता अनुभव करती हैं। परमेश्वर ने आपके साथ ही एक और जीवन बना रखा है, जिसका जीवन निरंतर कायम रहता है, जिसकी योग्यता सभी व्यक्तियों की योग्यताओं का समुच्चय या समूह है। वे योग्यताएँ हज़ारों वर्षों में उस जीवन में संचित होती चली आई हैं। वह जीवन ऐसा है, जो व्यक्तियों की भूलों और त्रुटियों के बीच में से अपना मार्ग बनाता हुआ बुद्धिमत्ता की ओर अग्रसर होता है, सदाचार की ओर अग्रसर होता है। वह जीवन ऐसा है,

जिसकी रचना और विकास के लिए प्रत्येक युग में भगवान् ने स्वयं कानून का उपदेश दिया है और यह जीवन है 'मानवता'।

मानवता, जैसा कि एक विचारक ने कहा है, एक ऐसा मनुष्य है, जो सदा सीखता रहता है। व्यक्ति मर जाते हैं, परन्तु सत्य के उस अंश को, जिसका कि उन्होंने दर्शन किया होता है, मानवता के सुपुर्द कर जाते हैं। वे उतने सत्कर्म को, जितना कि उन्होंने जीवन में किया होता है, मानवता के हाथ में सौंप जाते हैं, वह सत्कर्म उनके साथ नष्ट नहीं हो जाता; बल्कि मानवता उन्हें अपने भण्डार में सुरक्षित रख लेती है और बाद में आने वाले मनुष्य उसके फल को प्राप्त करते हैं। हम सब में से प्रत्येक, विचारों और विश्वासों के उस वातावरण में उत्पन्न हुआ है, जिन्हें भूतकाल में होने वाले मानवों ने मानवता के हाथों सौंपा था और हममें से हर एक आगे आने वाली मानवता के लिए कुछ-न-कुछ महत्वपूर्ण दान कर जाता है। मानवता की शिक्षा का भवन इस प्रकार निर्मित होता है कि उस मार्ग से गुज़रने वाला प्रत्येक व्यक्ति एक-एक पत्थर उसके निर्माण के लिए देकर चला जाता है। हम एक दिन के यात्री हैं। हम उस मानवता के भवन के पास से गुज़रते हैं, उसके प्रकाश के एक अंश को हम प्राप्त करते हैं। उस भवन का प्रकाश दिनों दिन क्रम से बढ़ता चला जाता है, निरन्तर बढ़ता रहता है। मानवता, ईश्वर का साक्षात् उपदेश है, वह ईश्वरीय ज्ञान का साकार रूप है। ईश्वरीय तेज मानवता में मूर्त होता है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में, एक युग से दूसरे युग में निरन्तर प्रवर्धित होता रहता है। इसके साथ ही उसकी कार्यकारिणी शक्ति में भी निरन्तर वृद्धि होती रहती है। एक श्रम से दूसरे श्रम तक, एक विश्वास से दूसरे विश्वास तक, मानवता स्पष्ट से स्पष्टतर योग्यताओं को प्राप्त करती चली जाती है। मान-

वता का ज्ञान—ईश्वर के विषय में और उसके ज्ञान के विषय में, उसके कानून के विषय में—निरन्तर बढ़ता चला जाता है।

परमेश्वर, मानवता के रूप में क्रमशः अपने ही मूर्तरूप की निरन्तर रचना करता रहता है। परमेश्वर का कानून एक है, क्योंकि परमेश्वर एक है। परन्तु हम उस कानून को अक्षर-अक्षर करके, शब्द-शब्द करके खोज पाते हैं, उसका समूचा ज्ञान किसी एक व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। वह ज्ञान तो मानवता के पास कण-कण करके संचित होता रहता है। व्यक्ति से व्यक्ति का संपर्क, जाति से जाति का संपर्क, देश से देश का संपर्क उस ज्ञान के देने में सहायक होता है। मानवता का वह भाग, जो अधिक ज्ञान पा लेता है, वह कम ज्ञानवान् भाग को ज्ञान देकर अपने समान बनाने का प्रयत्न करता है। मानवता के इतिहास के अध्ययन से प्रभु की इच्छा, उसके विधान, उसके कानून और उसके प्रति अपने कर्तव्यों का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि मानवता को ऊँचा उठाने के लिए परस्पर सहयोग करें और उसे शिक्षा देकर उच्चता की उस सीमा तक पहुँचायें, जिसके लिए भगवान् ने और उस काल ने आज्ञा दी है। युग के अनुरूप मानवता का उत्थान करना हम में से प्रत्येक का कर्तव्य है।

अतएव ईश्वर के कानून को जानने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि आप अवश्य ही अपने अन्तःकरण से प्रश्न पूछें; बल्कि यह भी आवश्यक है कि आप उसके बारे में मानवता की भी सलाह लें। सदाचार की भावना सदा विकासशील है। जिस तरह मानवता की शिक्षा निरन्तर विकासशील है, उसी तरह व्यक्ति की शिक्षा भी निरन्तर विकासशील बनी रहनी चाहिए। दूसरे युग की सदाचार की भावना पहले युग की सदाचार भावना से निश्चय ही अधिक ऊँची होनी चाहिए और

वह सतत विकासशील रहनी चाहिए। यह उसका स्वाभाविक विकासक्रम है। परन्तु इससे उल्टा भी होता है। जैसा कि आज हम अपने समाज में देखते हैं। इसमें कई वर्ग बन चुके हैं, जो एक-दूसरे से अलग हैं। उनमें परस्पर आदान-प्रदान निषिद्ध है। धनी वर्ग ग़रीबों को घृणा करते हैं, प्रेस और समाचार पत्र या तो सरकार की प्रशंसा करते हैं, या अपने पूँजीपति स्वामियों की। आपके कर्तव्य आपको बताये नहीं जाते; ताकि आप अपने कर्तव्यों को पूरा करके मानवता में ऊँचे उठकर उनका मुकाबला न करने लगें। परन्तु स्वार्थों की इस मनमानी में भी वह समय आकर रहेगा, जबकि आप मानवता की प्रगति का इतिहास पढ़ेंगे और उसकी प्रगति में अपना योगदान देने को समर्थ होने की योग्यता प्राप्त करेंगे। कब तक स्वार्थी तत्व ज्ञान को ताले में बन्द करके रख सकते हैं? समय आ रहा है, जब ज्ञान का सूर्य इन कृत्रिम आवरणों और बाधाओं को चीरकर अपनी प्रखर किरणों का प्रकाश करेगा। इस ज्ञान के सूर्योदय में हम सबको भाग लेना है। जितना ज्ञान आपके पास है उतना तो जन-साधारण में बाँटो, कृपण मत बनो। अतीत के इतिहास को पढ़कर जनता को उसका उपदेश करो। अपने वर्तमान का इतिहास आजीवन लिखकर समाज को अर्पण करो। विचारों के प्रसार का प्रयत्न करो। जिस प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त किये बिना आप किसी कार्य को भली-भाँति नहीं कर सकते उसी तरह दूसरे लोग भी नहीं कर सकते। इसलिए प्रशिक्षण पाकर दूसरों को प्रशिक्षण दो। आपका कर्तव्य उसी दिन से आरम्भ हो जाता है, जिस दिन आपको दूसरों की शिक्षा प्रदान करने का तनिक भी अवसर मिल जाता है।

यदि आप कर्तव्यों से अनभिज्ञ हैं, तो आप अपराधी नहीं, परन्तु यदि आप अनभिज्ञ न होते हुए भी अनभिज्ञ होने का

अभिनय करते हैं तो आप अवश्य दोषी, अपराधी और पापी हैं। आपकी आत्मा अवश्य ही आवाज़ देती होगी कि भगवान् ने आपको जो योग्यता दी है, उसके साथ ही वह योग्यता समाज को देने के लिए आपका कर्तव्य भी भगवान् ने अवश्य ही निश्चित किया है पर आप आत्मा की उस आवाज़ को सुनी-अनसुनी कर देते हैं। आप अपनी विचारशक्ति को अपनी आत्मा में ही क्यों सुलाए रखना चाहते हैं ? आपको मालूम कि यदि भगवान् ने आपको सत्य के प्रति प्यार दिया है तो उसने सत्य के व्यवहार के लिए आपका कर्तव्य भी निश्चित किया है।

भगवान् मानवता का पिता है। भगवान् मानवता का गुरु है। वह देश-काल के अनुसार मानवता के कर्तव्य का उपदेश देता है। मानवता की परम्परा से आप प्रश्न पूछें—अपने इर्द-गिर्द की जनता से अपने कर्तव्य के बारे में मत माँगें, विचारकों से सलाह लें; अपने युग के ही नहीं, अतीत के लोगों के अनुभवों से भी सलाह लें, तब आप अपने कर्तव्य के शुद्ध और सही रूप का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

जब आपकी आत्मा की आवाज़ मानवता के अन्तः करण की आवाज़ से मेल खाती है, तब आपको ध्रुव सत्य का ज्ञान होता है। उस समय अवश्य ही आपको ईश्वरीय कानून की एक पंक्ति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

हम मानवता में विश्वास रखते हैं। हमारा विश्वास है कि धरती पर मानवता ही ईश्वर के नियम की व्याख्या करती है। जब मानवता का मत हमारी आत्मा की आवाज़ के अनुकूल हो तो हमें मानना चाहिए कि हमें अपने कर्तव्य का ज्ञान मिल गया।

———

मानवता के प्रति

आपका कुछ कर्तव्य मानवता के प्रति भी है। नागरिक के रूप में आपके कुछ कर्तव्य हैं, पुत्र के रूप में कुछ कर्तव्य हैं। ये कर्तव्य पवित्र हैं, इनका उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिये। इन कर्तव्यों का पवित्र तथा अनुल्लंघनीय होने का कारण यह है कि इन कर्तव्यों को प्रकृति ने आपको सौंपा है। आप पुत्र बनाये गये हैं; इसलिए कि आप ईश्वरीय नियमों को सीख सकें, आप पिता बनाये गए हैं कि आप उन ईश्वरीय नियमों को सिखा सकें। आप नागरिक हैं, आपका एक देश है, देश इसलिए है कि आप एक सीमित भूभाग के निवासियों में, जो कई बातों में आपके साथ जुड़े हुए हैं, जो भाषा, स्वभाव, प्रकृत्ति आदि में आपसे सम्बन्धित हैं, उनमें आप ईश्वरीय कानून जीवन जीवन के नियम की व्याख्या कर सकते हैं। परन्तु जो लोग सदाचार को परिवार, जाति या देश के लिये सीमित कर देते हैं, वे आप को संकीर्ण अहंकार की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। और ऐसा अहंकार एक बुराई है, पाप है। बुराई दूसरों के लिए और आपके अपने लिए भी। देश और परिवार दो दायरे हैं, जो एक महान् दायरे के अन्दर खींचे गए हैं। उस महान् दायरे के अन्दर ही वे दोनों छोटे दायरे समाये हुए हैं। यह ठीक है कि वे दोनों दायरे सीढ़ी की पहली दो पौड़ियों के समान हैं, जिन्हें पार किये बिना आप ऊँचे नहीं चढ़ सकते। परन्तु उन पहली दो पौड़ियों पर ही पैर जमाये रखना मना है।

आप मानव हैं, अर्थात् बुद्धियुक्त समाजिक प्राणी हैं। आपकी उन्नति मनुष्य समूहों या संघों पर आश्रित है; व्यक्ति पर नहीं। मनुष्य समूह की कोई सीमा नहीं है। मानव-समूह; अर्थात् मानवता प्रसिद्ध है; इसलिए आप अपनी उन्नति चाहते हैं, तो मानवता की उन्नति की कामना आपके मन में अवश्य होनी चाहिए। मानवता ही वह भावना है, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से पृथक करती है। वह मानवता मनुष्य स्वभाव के बीजरूप में आपके अन्दर इसलिये पैदा की गई है कि वह समय पाकर वृक्ष के रूप में महान् बन जाय। आपका सारा जीवन इस प्रकार व्यतीत होना चाहिए कि उससे मानवता की क्रमिक प्रगति होती चली जाय। जब आप मानवता की स्वाभाविक प्रवृत्ति—सहयोग या सहकारिता की भावना को दबाते या नष्ट करते हैं, या उसके किसी अंग को कुचलते हैं, तब आप मनुष्य की श्रेणी से पतित हो जाते हैं, तब निम्नतर कोटि अर्थात् पशु श्रेणी में सम्मिलित हो जाते हैं। तब आप अपने जीवन के नियमों का उल्लंघन करते हैं, मानव जीवन के कानून को तोड़ते हैं। मनुष्य स्वभाव की किसी विशेषता को जब आप अपने अन्दर या किसी और के अन्दर कुचलने या नष्ट करने की कोशिश करते हैं, या किसी और को कुचलने देते हैं, तब आप क्रूर हिंस्र पशु की श्रेणी पर उतर आते हैं, तब आप अत्याचारी बन जाते हैं। भगवान की यह इच्छा नहीं कि उसके कानून आपके व्यक्ति के रूप में पूर्णता को प्राप्त हों। यदि ऐसा होता, तो भगवान आपको अकेला बनाता, एकान्त में अकेले ही रखता। भगवान की इच्छा है कि उसके नियम सम्पूर्ण विश्वमानवता में बिकसित हों। उसकी इच्छा है कि उसके नियम सभी उन प्राणियों में विकास को प्राप्त करें, जिन्हें उसने अपना ही प्रतिरूप बनाया है। भगवान की इच्छा

यह है कि उसका अपनी प्रतिकृति बनाने का काम पूर्णता (Perfection) को प्राप्त हो। वह पूर्णता है प्रेम जिसे भगवान ने संपूर्ण संसार के अर्पण किया है। वह प्रेम क्रम-क्रम से मानव में विकसित होता हुआ जब विश्व-मानवता तक पहुँच कर विशाल हो जाता है, तब मानव भगवान की ही प्रतिकृति या मूर्ति बन जाता है।

आपकी भौतिक (दुनियावी) और वैयक्तिक (व्यक्तिगत) सत्ता, अपनी सीमित काल और शक्ति की परिधि में, उस भगवान के अपूर्ण रूप के दर्शन कराती है, वह भगवान के किसी एक अंश का ही वर्णन करे; परन्तु वह भगवान के विराट् रूप का दर्शन नहीं करा सकती। केवल मानवता ही, परंपरा से निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी, युग-युगान्तर में संचित व्यक्तिगत गुणों के संग्रह के फलस्वरूप उस भगवान के संपूर्ण स्वरूप का दर्शन कराने में समर्थ हो सकती है। भाव यह है कि सम्पूर्ण मानवता में ही भगवान के दर्शन हो सकते हैं। भगवान ने आपको जीवन दिया, वह इसलिए कि आप उसका प्रयोग मानवता के हित में करेंगे। आपको जीवन मिला कि आप अपने गुणों और विशेषताओं से अपने साथियों को गुणवान और विशेषता से युक्त बनायेंगे, आप अपने गुणों से अपने आस पड़ौस के मनुष्यों में गुणों का विकास करेंगे और अपने कर्मों से मानवता के सुधार कार्य में अपना योगदान देंगे। सत्य की उस खोज में आप भी अपनी शक्ति के अनुसार सहायक बनेंगे, जिसके लिए मानवता सतत प्रयत्नशील रहती चली आई है।

आप स्वयं शिक्षा ग्रहण करें और दूसरों को शिक्षित बनायें। अपने आप को सर्वगुण संपन्न बनाने का प्रयत्न करें। भगवान आपके अन्दर है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। परन्तु

भगवान् समान रूपेण उन सब मनुष्यों में है, जो इस विश्व में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, भगवान् उन सब युगों में हैं, जो हो चुके हैं, जो वर्तमान है या जो आगे आने वाले हैं।

सारा विश्व भगवान् का मन्दिर है। विश्वमात्र में उसके दर्शन कीजिये, विश्वात्मा में उसे व्यापक देखिये। विश्व के प्राणिमात्र में उसको विराजमान मानिये। आप अपने आप को पवित्र मानें इतना ही काफ़ी नहीं है, सारे विश्व से अलग अपनी पवित्रता को बनाये रखने मात्र से आपके कर्तव्य की समाप्ति नहीं हो जाती। यदि आपके दो कदम पर भ्रष्टाचार होता है, तो आप अपने आपको पवित्र कहकर छुटकारा नहीं पा सकते। इसका कोई लाभ नहीं कि आप अपने हृदय में सत्य की उपासना करते हों, जबकि धरती के अन्य भाग पर भूलों और दोषों से भरी भावनाओं का राज्य है। आपके दूसरे भाई अगर सत्य का पालन नहीं करते, तो आप अपने आपको पवित्र मानकर ही छुटकारा नहीं पा सकते। धरती सब मनुष्यों की माता है, इस नाते सब मनुष्य मात्र आपस में भाई-भाई हैं। यदि आप अपने भाईयों के दोषों और उनकी भूलों को मिटाने का प्रयत्न नहीं करते, तो स्पष्ट है कि आप अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते।

आपके भाईयों अर्थात् अन्य मनुष्यों में जो कि सत्य का पालन नहीं करते, उनकी अमर आत्मा में भगवान् की मूर्ति विकृत होती आप देखते हैं और उसे सुधारने सँवारने का काम आप नहीं करते, तो फिर किस मुँह से कहते हैं कि आप अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं? भगवान् हमसे यह चाहता है कि हम उसके नियमों की पालना करने के रूप में उसकी उपासना करें। परन्तु उसके नियम या कानून क्या हैं?—बस यहीं हम भूल कर जाते हैं। ईश्वरीय नियमों की व्याख्या करने

में अक्सर हमसे भूल हो जाती है। यही नहीं हम ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन भी कर जाते हैं। अतः उसके कानून को तोड़ते हैं, जब कि हम अपने इर्द-गिर्द के मनुष्यों से व्यवहार करते हुए उपनियमों को व्यवहार में नहीं लाते।

भगवान् जैसा आपके द्वारा अपने नियम का पालन होते देखना चाहता है, उसी तरह वह लाखों करोड़ों अन्य लोगों द्वारा भी उन नियमों का पालन होना देखना चाहता है। परन्तु जब आप निश्चेष्ट होकर बैठ जाते हैं, तब क्या आप यह कहने की हिम्मत कर सकते हैं कि आप ईश्वर-विश्वासी है ?

आप यूनानी, पोलिश, राजपूत, बुन्देले या मराठे वीरों का हाल पढ़ते है। वे अपने लक्ष्य के लिए कट-मरने को तैयार रहते थे। उनके वीरतापूर्ण कार्यों को पढ़कर आपमें उत्साह की लहरें ठाठें मारने लगती हैं। क्या बात है कि उनकी लड़ाइयों के हाल पढ़कर आपके मन में जोश भर जाता है, उनकी जीत पर आप खुशी मनाते हैं, उनके हार के वृत्तान्त पर आपको दुःख होता है ? क्या कारण है इसका ? कारण यह है कि सारी विश्व-मानवता अन्ततः एक है। यही कारण है कि आपके अपने देश का या संसार के किसी भी कोने का निवासी एक आदमी किसी उद्देश्य को लेकर खड़ा हो जाता है, उसका वह उद्देश्य मानवता के किसी उसूल से सम्बन्ध रखता है। तब वह उसके लिए कठोर परिश्रम करता है, कष्ट सहता है यहाँ तक कि वह अपने प्राण भी दे देता है। आप उसको नेता, महान् पुरुष या शहीद का नाम दे देते हैं। क्या सम्बन्ध है, आपका उससे ? यही कि वह भी उसी विशाल विश्व-मानवता का एक अंग है, जिसके आप अंग हैं। आपके लिए वह विदेशी है, आप उसकी भाषा नहीं जानते, आप उसके रीति-रिवाजों को नहीं जानते, आप उसके रहन-सहन को नहीं जानते, परन्तु आपके हृदय से स्वतः यह

ध्वनि निकलती है—"वे व्यक्ति जो हज़ारों वर्ष पहले या आज भी किसी उद्देश्य को लेकर प्राणों का उत्सर्ग करते हैं, हमारे भाई हैं।"

व्यक्ति का विकास नहीं, मानवता का विकास महत्त्वपूर्ण है। इस बात का विशेष महत्त्व है कि आने वाली संताने आपके संघर्षों और बलिदानों से शिक्षा ग्रहण करके आपसे ऊँची उठें और शक्तिशाली बनें। वे ईश्वरीय कानून को आपसे अधिक समझ सकें, सत्य की आपसे अधिक अच्छी उपासना कर सकें।

यह बात महत्त्व रखती है कि मनुष्य की प्रकृति, उदाहरणों से पुष्ट होकर आगे-आगे उत्तम बनती जाय, और धरती पर ईश्वर के कानून को समझने की अधिक-से-अधिक योग्यता प्राप्त करती जाय। और जहाँ कहीं भी नए सत्य की उपलब्धि हो, जहाँ कहीं भी मानवता एक कदम आगे बढ़ाये, शिक्षा में प्रगति करे, निर्माण में प्रगति करे, सदाचार में प्रगति करे, तो समझो की सारी ही मानवता का कदम वहाँ आगे बढ़ा; क्योंकि मानवता की वह एक स्थान की प्रवृत्ति समय पाकर सम्पूर्ण मानवता के उपयोग में अवश्य आकर रहेगी।

देश-देश के मनुष्य एक ही विशाल सेना के भिन्न-भिन्न सैनिक हैं, जो अपने भिन्न-भिन्न मार्गों से एक ही मोर्चे पर पहुँचने का प्रयत्न रहे हैं। फिलहाल आप अपने सामने के नायकों व नेताओं को देख रहे हैं; आपकी भिन्न-भिन्न रंगों की वर्दियाँ हैं। आपकी निर्देशाज्ञाएँ अलग-अलग प्रकार की, अलग-अलग भाषाओं में हैं; आपके और दूसरे देशों की टुकड़ियों के बीच में स्थान की दूरी है, पहाड़ हैं, उन्हीं के कारण आप नहीं समझ पाते कि आप सब एक ही महासेना के अंग हैं; अभी तो आप अपने नज़दीक के ही लक्ष्य पर दृष्टि गड़ाए आगे बढ़ रहे हैं; परन्तु आप सबके ऊपर एक है, जो सबको देख रहा है और

सबकी गतिविधियों के लिए निर्देश दे रहा है, वह सबका संचालन कर रहा है। सारे संग्राम के रहस्य को भगवान् जानता है। वह आपको एक ही कैंप में और एक ही झंडे के नीचे एकत्र कर देगा।

आज का युग इस प्रकार के मानवता के प्रति विश्वास का युग है। ज़रा आज के इस विश्वास की उस युग से, उस आदिम युग के मनुष्य के विश्वास से तुलना कीजिए। आज मनुष्य सारे विश्व में एक ही पवित्र राज्य की, एक ही शासन की स्थापना तक पहुँच गया है; परन्तु पुराने जमाने में मनुष्य भगवान के विषय में केवल इतना ही जानता कि "वह है।" वह उसके कार्यों तथा उसकी शक्ति की व्याख्या नहीं कर सकता था। वह ईश्वरीय नियम की व्याख्या नहीं कर सकता था। वह नहीं बता सकता था कि ईश्वर में और एक व्यक्ति में क्या सम्बन्ध है ? वह भगवान को शरीर, इन्द्रिय और विषय से अलग करके न पहचान सकता था। वह ईश्वर को वृक्ष के रूप में, बादलों में कड़कती बिजली के रूप में या पहले-पहल देखे पशु के रूप में मानकर उसकी उपासना करता था। उस समय मनुष्य परिवार के सिवा, मनुष्य के लिए अन्य किसी सम्बन्ध की कल्पना न कर सका था। परिवार के घेरे से बाहर के मनुष्य उसके लिए अपरिचित; बल्कि शत्रु होते थे। उस समय मनुष्य के लिए आचार या कर्तव्य एकमात्र यही था कि वह अपने परिवार की रक्षा करे। पीछे चलकर ईश्वर का विचार आया। तब ईश्वर केवल परिवार का रक्षक न रह गया। बल्कि वह अनेकों परिवारों के समूह या समितियों का रक्षक हो गया। इसी समय अनेक देवतावाद शुरू हुआ। एक ईश्वर की जगह अनेक ईश्वर हो गए। तब इसके साथ ही आचार या मनुष्य के कर्तव्य का

दायरा कुछ विशाल हुआ। मनुष्य अपने परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों से बढ़कर भी किन्हीं कर्तव्यों को पहचानने लगा। तब वह अपनी जाति और देश की उन्नति के लिए प्रयत्न करने लगा, परन्तु तब भी मानवता के प्रति, विश्वमानवता के प्रति उपेक्षा का भाव चलता ही रहा। मनुष्य ने अभी तक यह न पहचाना था कि सारे संसार के मानव एक हैं और उस मानवता के प्रति मनुष्य के कुछ कर्तव्य हैं।

उस समय प्रत्येक देश एक दूसरे को अनार्य, असुर, बर्बर आदि नाम देता था और वैसा ही उनसे व्यवहार भी करता था और ताकत या धोखे से एक-दूसरे को जीतने या दबाने का प्रयत्न करता था। हर एक देश अपने ही अन्दर विदेशी या जंगली के रूप में, लाखों लोगों से व्यवहार करता था। ऐसे मनुष्यों की संख्या लाखों तक होती थी, जिन्हें मनुष्य के धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। उन्हें भिन्न स्वभाव के समझा जाता था। उन्हें आज़ादों में गुलाम माना जाता था। जब मनुष्य ने भगवान की एकता का ज्ञान प्राप्त किया, उसी के परिणाम-स्वरूप मनुष्य ने मानव की एकता का भी ज्ञान पाया। ऋषियों-महर्षियों और सन्त महात्माओं ने कहा—

"वह ईश्वर एक है, जिसका वर्णन विद्वान् भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं।"

महात्मा ईसा मसीह ने कहा—

"There is one God only; all men are the sons of God"

अर्थात् "ईश्वर एक है, सब मनुष्य ईश्वर के पुत्र हैं।" इस एक सत्य के ज्ञान ने संसार के स्वरूप को बदल डाला। इस ज्ञान ने मनुष्य के आचार का क्षेत्र व्यापक बना डाला। देश की सीमाओं को पार करके मनुष्य का कर्तव्य संसार तक फैल गया,

मनुष्य के अपने परिवार के प्रति कर्तव्य और देश के प्रति कर्तव्य के साथ ही—मानवता के प्रति मनुष्य के कर्तव्य—इतना और जोड़ दिया गया।

तब मनुष्य ने सीखा कि जहाँ कहीं उसे कोई मनुष्य मिलता है, वह वास्तव में उसका भाई मिलता है, ऐसा भाई, जिसे उसी के समान अमर आत्मा मिली है। उसे भाई मिला है, जिससे उसे प्यार करना चाहिए, जिसके विश्वास में उसे हिस्सा लेना चाहिऐ और सलाह या काम द्वारा सहायता की आवश्यकता पड़े, तो उसकी सहायता भी करनी चाहिए।

कई शताब्दियों तक मानवता के लिए इस प्रकार का सतत अभ्यास चलते रहने के बाद आज हम समझ सके हैं कि मानवता का प्रयोग किसी एक व्यक्ति या समूह के लिए नहीं; बल्कि समग्र मानवता के लिए होना चाहिए। इस सत्य को लागू करना ही काफ़ी नहीं कि सारे संसार की मानवता एक है; बल्कि इस सत्य के ज्ञान की भी आवश्यकता है कि अखिल विश्व के मनुष्य एक शरीर हैं और उनके विकास तथा प्रगति की आवश्यकता है। इस बात की आवश्यकता है कि वे एक ही कानून से शासित हों। वह कानून है विकास का कानून, प्रगति का कानून। प्रगति का अर्थ है, यहीं इस संसार में ही उन्नति, मानव जीवन की उन्नति, सांसारिक जीवन को सुखमय, आनन्दमय व प्रेममय बनाना।

अब समय आ गया है, जब मनुष्य को यह शिक्षा देनी चाहिए कि जब सारी मानवता एक ही शरीर है, हम सब उस शरीर के अंग रूप हैं; अतः उस शरीर के विकास के लिए काम करने को हम बाध्य हैं। साथ ही इसके जीवन को अधिक संतुलित, क्रियाशील तथा मजबूत बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। अब समय आ गया है, जब हमें निश्चित समझ लेना चाहिए

कि हम अपने साथी मनुष्य भाइयों की आत्मा के द्वारा ही ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। अपने साथियों के हृदयों में सुधार करना, उन्हें पवित्र करना भी हमारा ही कर्तव्य है। इसके लिए हमें इस बात की आवश्यकता नहीं कि वे इस प्रकार की सहायता हमसे माँगें। समय आ गया है कि ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति हो और ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति सम्पूर्ण मानवता के ही हाथों होगी। अब व्यक्ति के प्रति उदारता या दानवीरता दिखाने के स्थान पर सामूहिक रूप में कार्य करने की आवश्यकता है, सामूहिक उत्थान की आवश्यकता है, सम्पूर्ण मानवता में सुधार करके उसकी उन्नति करने की आवश्यकता है; और इसी उद्देश्य के लिए परिवार और देश को भी संगठित करने की आवश्यकता है।

इतना करने के बाद मानवता के प्रति हमारे अन्य कर्तव्य स्वयं खुलते चले जाएँगे ; जो कि अधिक विस्तृत, विशाल और व्यापक होंगे। क्रम-क्रम से हम जीवन के स्पष्टतर नियमों को समझते चले जाएँगे। इस तरह परमेश्वर मानवता का स्वयं मार्गदर्शन कर रहा है, जिससे कि उसकी आगे उन्नति हो सके। मानवता के इस सुधार के साथ व्यक्ति स्वयं ही सुधरता है। मानवता की उन्नति के साथ ही हम भी उन्नति करते हैं। सम्पूर्ण मानवता की उन्नति के बिना आप यह आशा नहीं कर सकते कि आपकी आचार सम्बन्धी या पदार्थ सम्बन्धी उन्नति सम्भव है। यदि आप चाहें भी, तो आप अपने जीवन को सम्पूर्ण मानवता से पृथक नहीं कर सकते। आप इसी में जीते हैं, इसी के द्वारा जीते हैं, इसी के लिए जीते हैं। आपकी आत्माएँ कुछ विशिष्ट शक्तिवान् आत्माओं को छोड़कर, अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के प्रभाव से अपने आपको अछूता रखने में असमर्थ हैं, जिस प्रकार शरीर चाहे वह कितना ही सुगठित क्यों न हो, अपने

इर्द-गिर्द की दूषित हवा के बुरे प्रभाव से नहीं बच सकता। आपमें से कितने लोगों के पास ऐसी मानसिक शक्ति है कि वे अपने पुत्रों तथा पुत्रियों को पूर्णतया सत्य से युक्त बना सकें? आपमें से कितने हैं, जो अपनी सन्तान को धन का मोह छोड़ना सिखला सकते हैं, जब कि जानते है कि पैसा संसार में इतना प्रबल है! इसी से सम्मान पाया जाता है, इसी से प्रभाव बढ़ता है, इसी से प्रतिष्ठा बढ़ती है, यही वह शक्ति है, जिसके बल पर अत्याचार, अपमान आदि से आत्मरक्षा की जा सकती है। आपमें से कौन है जो अपनी संतान के कान में यह न फूँकेगा—

"इन देशवासियों का विश्वास न करो। ईमानदार आदमी को इनसे दूर रहना चाहिए। शान्ति चाहने वाले को लोक-कार्य से दूर ही रहना चाहिए। बस घर का ही सुधार करो।"

ये सारे और इस तरह के अन्य उपदेश अनाचारमूलक हैं। परन्तु जनसाधारण इसी तरह की 'सयानी' बातें अपनी सन्तान को सिखाते हैं। यदि कहीं आप इसके विरुद्ध उपदेश देने की शक्ति भी रखते है, तो समाज में से हजारों आवाजें आपकी आवाज़ को कुचलने के लिए आएंगी। लोग अपने दुष्ट उदाहरणों द्वारा आपको इस बात से निरुत्साहित करने का प्रयत्न करेंगे कि आप अपनी सन्तान को सत्य पर चलाएँ। इस प्रकार की सामाजिक घुटन और पतन की अवस्था में क्या आप अपनी आत्मा का विकास करके उसे विशालता प्रदान कर सकते हैं?

अब अपनी भौतिक या पदार्थ जगत् की उन्नति की बात लीजिए। क्या आप सबकी सांसारिक उन्नति किये बिना अपनी उन्नति कर सकते हैं? कभी नहीं। गरीबों को ऊँचा उठाने के लिए करोड़ों रुपये दान या चंदे के रूप में दिए जाते हैं; पर उससे क्या उनका जीवन सुधरा? यह ग़लत ढंग है। सबको सामूहिक रूप में ऊँचे उठाए बिना क्या कभी मानवता

का हित किया जा सकता है ? जहाँ देश के दो भाग बने हुए हों एक शोषक और दूसरे शोषित, वहाँ छुटपुट दान देने से या सदावर्त लगाने से कहीं मनुष्यों का कल्याण हो सकता है ?

एक बात और ! जब कि संसार के सब देशों में फौजों की, जासूसों की, एजेंटों की, सरकारी कारखानों में युद्ध का सामान बनाने वाले कर्मचारिथों की ही संख्या इतनी बढ़ती जाय कि वह देशों की आमदनी का अधिकांश भाग निगल जाय, तब जनसाधारण की उन्नति के काम लगातार कैसे चलाये जा सकते हैं। एक मनुष्य का भला सोचें तो सम्पूर्ण मानवता पर एक साथ विचार कीजिये। सारी मानवता के सामूहिक कल्याण के बिना मानव का कल्याण नहीं हो सकता। क्या आपके लिए यह काफी है कि आप अपने देश के लिए एक अच्छी सरकार संगठित कर दें और फिर चुप बठ जाएँ ? यह काफी नहीं। किसी भी देश के लोग आज अपने ही देश की पैदावार पर नहीं जी रहे। आप उपज का परिवर्तन करते हैं, आप माल विदेशों से अपने यहाँ मँगाते हैं और अपने यहाँ की उपज अन्य देशों को भेजते हैं। जिस देश को आप माल भेजते हैं, उस देश के लोग एकाएक गरीब हो जाते हैं, तो वे आपके यहाँ का माल नहीं खरीद्द सकते। तब उनकी गरीबी का असर आपके देश के लोगों की आमदनी पर पड़ता है। मान लीजिए किसी देश में स्थापित बुरे शासन के कारण वहाँ का व्यापार चौपट होता है और वे आपकी आवश्यकता की चीज आपके देश में भेजने में असमर्थ हो जाते हैं, तो उनकी हानि के परिणामतः आपकी भी हानि होती है। इससे साफ सिद्ध होता है, कि आज एक देश की हानि दूसरे देश की हानि है, मानवता के एक अंग की हानि दूसरे अंग की हानि, अर्थात सम्पूर्ण मानवता की हानि है। आज संसार भर के देश आपस में उधार खाता चलाते हैं। एक

दूसरे को कर्ज पर माल और पैसा देते हैं। यदि आपके देश को कर्जा देने वाले देश में गरीबी आ जाय तो उसकी गरीबी के कारण आपके देश के बहुत से काम रुक जाएँगे।

मनुष्य के समूचे सुधार या उद्धार के बिना आप अपना सुधार अथवा उद्धार नहीं कर सकते। इसलिए आपका कर्तव्य है और इसी में आपका हित भी है कि इस बात को कभी मत भूलें कि मानवता के प्रति आपके कर्तव्य सर्वोपरि हैं। उन्हें पूरा किये बिना आप कभी भी अपने परिवार या अपने देश के प्रति अपने कर्तव्यों को पूर्ण नहीं कर सकते।

आपके शब्द मानवता के लिए हों, आपकी चेष्टाएँ मानवता का हित करने वाली हों, आपके कर्म और प्रयत्न मानवता के लिए हों, आपकी शुभकामनाएँ सब मनुष्यों के लिए हों; क्यों-कि भगवान् एक है और सब मनुष्य उसी के पुत्र हैं। ईश्वर सबका पिता है। वह सबसे प्रेम करता है। आप ईश्वर से प्रेम करें, आप सब मनुष्यों से प्रेम करें, उस ईश्वर के कानून से प्रेम करें जो सत्य और न्याय पर आश्रित है।

चाहे आप धरती के किसी भी भूभाग पर रहें, किसी भी देश में रहें, पर जहाँ कहीं मनुष्य अधिकार के लिए लड़ रहा है, न्याय के लिये संघर्ष कर रहा है, सत्य के लिये जूझ रहा है, वह मनुष्य आपका भाई है। जहाँ कहीं मनुष्य किसी अन्य की भूल से दबा जा रहा है, किसी के अत्याचार से कुचला जा रहा है, वहीं आपका भाई है। चाहे कोई गुलाम है या आज़ाद, जो मनुष्य है, वह आप का भाई है। मनुष्यमात्र की उत्पत्ति एक ईश्वर से हुई, एक ही ईश्वर ने मनुष्य को नियम या कानून प्रदान किया। मनुष्य मात्र का लक्ष्य भी एक ही है। अपने विश्वास, अपने मत,अपने कर्म यहाँ तक कि अपने झंडे भी एक बनाइये। यह मत कहिये कि हममें भाषा का भेद है; इसलिए

हम भिन्न हैं। आँसू, मुस्कान, हर्ष, क्रोध, आदि की भाषा हम सबमें समान है। जो आपकी भाषा नहीं समझता, उसे अपने भाव अपने आँसू और मुस्कान से समझाइये। यह मत कहिये कि भगवान् बलवान का है। भगवान् बल को नहीं प्रेम को चाहता है। मानव से प्यार कीजिये, मानवता से प्यार कीजिये और सब मनुष्यों से एक-सा प्रेम कीजिये।

अपने परिवार या देश के लिए कोई भी काम करने से पहले सोचिये कि उससे मानवता की कुछ हानि तो नहीं होती ? किसी काम को करने से पहले आत्मा को टटोलिये। यदि आपकी आत्मा आवाज़ देती है कि आपका काम मानवता के विपरीत या विरुद्ध है, तो आप उस काम से तुरन्त हाथ खींच लें, चाहे उससे आपके परिवार या देश का तुरन्त ही लाभ होने वाला हो; पर मानवता विरोधी उस काम को कदापि न करें।

मानवता की विभिन्न जातियों में एकता लाने वाले देवता बनें, उपदेशक बनें। कभी भी आपस के विरोध की बात न करें। इस बात को आज सिद्धान्त रूप में तो सभी मानते हैं; पर व्यवहार में कोई नहीं लाता।

बस, इतना कर्तव्य करें तो इससे अधिक न मनुष्य और न भगवान आपसे कुछ माँगता है। भगवान आपके दृढ़ विश्वास को चाहता है, साथ ही वह आपकी बहुसंख्या को एक साथ देखना चाहता है। ज्यों ही मानवता की बहुसंख्या को एकमत देखता है, वह उनके हाथों में कोई महान् काम सौंप देता है।

राष्ट्र के प्रति

आपके सबसे प्रमुख कर्तव्य मानवता के प्रति हैं। आप मनुष्य पहले है और पिता या नागरिक बाद में। यदि आप अपने प्रेम के बन्धन में सम्पूर्ण मानव परिवार को नहीं बाँध सकते, यदि सम्पूर्ण मानवता की एकता में आपका विश्वास नहीं है, यदि 'ईश्वर एक है' इस बात को आप नहीं मानते, यदि आपका मनुष्य-मनुष्य के भ्रातृभाव में विश्वास नहीं है, तो आपकी मानवता त्रुटिपूर्ण है। ऐसी दशा में आप एक श्रेष्ठ पिता या नागरिक नहीं बन सकते।

यदि कहीं कोई मनुष्य सिसक रहा है, यदि कहीं मानवता के गौरव की हत्या हो रही है, यदि कहीं मनुष्य को असत्य अथवा अत्याचार से दबाया जा रहा है, तो आपका पहला कर्तव्य है कि आप उस सिसकते व्यक्ति की सहायता करें, मानवता के गौरव की रक्षा करें, असत्य का भण्डाफोड़ करें और अत्याचार का डटकर विरोध करें।

यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आप जीवन के नियम का पालन नहीं करते, आप अपने धर्म का पालन नहीं करते, जिससे भविष्य में आपकी भी हानि होकर रहेगी। पर यदि आप जीवन के नियम का पालन करते हैं, अपने कर्तव्य का, धर्म का पालन करते हैं, तो अपने भविष्य को सँवारते हैं।

परन्तु आप क्या कर सकते हैं? सदाचार की उन्नति के लिए मानवता की प्रगति के लिए एक व्यक्ति की शक्ति ही

कितनी है ? आप समय-समय पर अपने विश्वास को ही प्रकट कर सकते हैं । शायद किसी मौके पर किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जो कि आपके देश का निवासी नहीं है कुछ दान कर सकते हैं इससे अधिक आप क्या कर सकते हैं ? परन्तु भविष्य निर्माण के लिए दान ही सब कुछ नहीं है । मानवता के भविष्य के लिए आज का नारा है—सामूहिक उत्थान, सामूहिक प्रगति ।

भ्रातृभाव, सहकारिता, लक्ष्य की एकता, छुट-पुट दान की अपेक्षा बढ़-चढ़कर हैं । आप स्वयं सोचिए—आप बहुत से लोग मिलकर अपने निवास के लिए एक भवन का निर्माण करते हैं, वह निश्चय ही अपने-अपने लिए अलग-अलग झोंपड़ी बनाने से उत्तम कार्य है । परन्तु आपमें भाषा भेद है, प्रवृत्ति भेद है, आदतों का भेद है, सामर्थ्य का भेद है, इसलिए आप सहकारिता के लिए प्रयत्न नहीं करते आप कोई महान् काम नहीं करते ।

व्यक्ति अत्यन्त दुर्बल है, उसकी शक्ति सीमित है, और मानवता अत्यन्त विशाल है । व्यक्ति अपनी शक्ति से मानवता के सागर को पार करना चाहता है । क्या यह आश्चर्य की बात नहीं ? और कोई ऐसा रास्ता नहीं कि मनुष्य की शक्ति दुगनी या चौगुनी कर दी जा सके ।

जिस प्रकार एक योग्य ओवरसियर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की योग्यता तथा सामर्थ्य को जानकर उनके योग्य काम उनके सुपुर्द करता है, उसी प्रकार ईश्वर ने भी इस भूगोल के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न मनुष्य-समूह को भिन्न-भिन्न काम सौंप दिये और इस प्रकार राष्ट्रों या देशों का जन्म हुआ । जिन देशों में बुरी सरकारें हैं, उन्होंने भगवान् की योजना को बिगाड़ डाला उन्होंने दूसरे देशों को हराकर अपने आधीन बनाया, लोभ के वश होकर दूसरों का शोषण किया, दूसरों की सत्ता से ईर्ष्या करके उन्होंने भगवान् की योजना को इस प्रकार बिगाड़ डाला

कि आज बहुत से देश गुलामी के दिन काटते दिखाई देते हैं। गोरी जातियों ने अपने आपको एकमात्र प्रभु का पुत्र मानकर दूसरों को अपने बराबर मानने से ही इनकार कर दिया। उन्होंने देशों की मनचाही सीमाएँ बना डालीं, एक से दूसरे को लड़ा दिया। परन्तु अब समय आ गया है कि मनमानी समाप्त होगी और राष्ट्रों का स्वतन्त्र विकास होगा। अब राष्ट्र-राष्ट्र में संतुलन होगा, भ्रातृभाव होगा।

देश-देश में भ्रातृभाव की स्थापना होने पर ही मानवता की उन्नति के लिए काम शुरू होगा। जीवन के नियमों की खोज आरम्भ होगी, उसके व्यवहार का प्रयत्न प्रारम्भ होगा। मानवता के लिए जीवन के नियमों पर राष्ट्र आपस में मिल-कर चलेंगे, सहकारिता से कार्य करेंगे। प्रत्येक राष्ट्र की सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार मानवता के उत्थान का कार्य उसे सौंपा जायेगा, काम का बँटवारा होगा। प्रत्येक देश अपनी शक्तिभर उसमें योगदान करेगा। इस लक्ष्य की प्राप्ति शान्तिमय उपायों से की जाएगी। तब ही मानवता की प्रगति होगी।

आपमें से हरएक को मज़बूत बनना होगा, उन करोड़ों देशवासियों के लिए अपने हृदय में प्रेम जगाना होगा, जो आपके समान प्रवृत्तियाँ रखते हैं, जो आपके समान ही ऐतिहा-सिक परम्परा से शिक्षा पाए हैं। आपके प्रयत्न से देशवासियों का भला होगा और देशवासियों के सामूहिक उत्थान से मानवता की प्रगति होगी।

भगवान् ने आपको अत्यन्त उत्तम देश में जन्म दिया है। जिस की सुस्पष्ट सीमाएँ हैं। पर्वत और सागर जिसके सीमा-रक्षक हैं। इस देश से आपको प्यार करना है। बिना देश के आपका कोई नाम नहीं, कोई चिन्ह नहीं, कोई आवाज़ नहीं, कोई अधिकार नहीं, विश्वमानव की बिरादरी में आपका प्रवेश तक नहीं हो

सकता, आप जंगली हैं, बर्बर हैं सभ्य मानवों की किसी सभा में आपका कोई स्थान नहीं, आप ऐसे सैनिक हैं जिनका कोई झंडा नहीं। आपका कोई देश नहीं तो आपका न कोई विश्वास करेगा और न आपको संरक्षण देगा, आपकी ज़मानत देने को भी कोई तैयार न होगा। यदि आपका कोई देश नहीं तो आपका अन्यायपूर्ण नियमों से छुटकारा पाने का श्रम वृथा है। जहाँ राष्ट्र नहीं है, वहाँ ऐक्य नहीं, एकमत नहीं, वहाँ व्यक्ति का अहंकार ही राज्य करता है, वहाँ शक्तिशाली अपनी मन-मानी करता है, वहाँ जिसकी लाठी उसकी भैंस हैं; क्योंकि सबकी रक्षा के लिए कोई सामूहिक रक्षण-शक्ति नहीं है। राष्ट्र ही आपकी सब ऊँची आकांक्षाएँ पूर्ण कर सकता है। पर आप अपने अधिकारों को राष्ट्र से तभी पा सकते हैं, जब कि पहले आप उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

अतः अपने देश से प्यार कीजिए, आपका देश ही आपका घर है। भगवान् ने आपको यह घर दिया है। इस घर में उसने असंख्य अन्य परिवार भी बसाये हैं। उनके साथ आपके सम्बन्ध हैं, उनकी भावनाएँ आपसे मिलती-जुलती हैं, उनसे आपका स्वभाव मिलता है, उनके साथ ही आपको भी वही भूखण्ड मिला है। आप ऐसे काम करें, जिनसे उस भूखण्ड का आर्थिक व सामाजिक ऐसा विकास हो जो मानवता के विकास में सहायक हो। यह देश आपकी कर्म-भूमि है। यहाँ आप खेती करते हैं, कारखाने चलाते हैं, कला-कौशल और व्यवसाय से धन को फैलाते हैं। आप ऐसी उपज पैदा कीजिए और ऐसा सामान बनाइये जो मानवता के हित में हो, मानवता के लाभ का हो।

आपका राष्ट्र विश्वरूपी महायन्त्र का एक पुर्ज़ा है। वह पुर्ज़ा उस महायन्त्र के संचालन में सहायक है। यदि वह पुर्ज़ा उस महायन्त्र के संचालन में रोड़ा अटकाने लगे, बाधक बन

जाय, तो मानवता उस पुर्जे को निकाल फेंकने के लिए बाध्य हो जाएगी।

राष्ट्रसंघ का सम्मानित सदस्य बनने के लिए आपके 'राष्ट्र' की सत्ता नितान्त आवश्यक है। यदि आपके राष्ट्र की सत्ता ही न रहे, तो आप मानवता की बिरादरी में बराबर का अधिकार कैसे पा सकते हैं; इसीलिए राष्ट्र की एकता तथा उसके स्वरूप की रक्षा करना आपका कर्तव्य हो जाता है। समानों में ही एकता और मैत्री हो सकती है। आप यदि राष्ट्र हैं, तो किसी अन्त-राष्ट्रीय संगठन के भी सदस्य हो सकते हैं।

मानवता एक विशाल सेना है, जो अज्ञात् रणयात्रा पर मार्च (प्रचलन) करती हुई आगे बढ़ रही है। देश-देश की की जनता उस विशाल सेना की विविध सेनाएें हैं। हर एक को भिन्न-भिन्न काम सौंपा गया है। अपने-अपने काम को सही रूप में निभाने से राष्ट्र अपने काम में कृतकार्य हो जाएगा। परन्तु राष्ट्र तभी कृतकार्य हो सकता है, जब कि उसके नागरिक उसकी आज्ञा मानें तथा उसके निश्चित किये कार्यक्रम पर चलकर कार्य पूरा करें। एक मनुष्य भी यदि राष्ट्रीय कार्यक्रम में बाधा डालता या उसे ग़लत ढंग से करता है, तो वह राष्ट्र की प्रगति में रोड़े अटकाता है, जिसका अर्थ है मानवता की विशाल सेना के मार्च में बाधा डालना। राष्ट्र ने जो झंडा आपके हाथों में थमाया है, उसे नीचा मत होने दीजिये।

आप कहीं भी रहें, आपके इर्द-गिर्द किसी तरह के भी लोग हों, परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, मनुष्य की स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहिये; परन्तु संघर्ष करते हुए अपने राष्ट्र को सदा आँखों के सम्मुख रखिये। आपकी किसी चेष्टा से, आपके देश का झंडा नीचे न होने पाए। आप स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए खून तक बहाने के लिए तैयार रहें ताकि उससे आपके देश

का नाम हो, लोग कहें कि यह उस देश का रक्त है । आपके बलिदान से आपके देश को सम्मान, और श्रद्धा प्राप्ति होनी ही चाहिए। आप का मन निरन्तर देश का चिन्तन करता रहे। आपका प्रत्येक कार्य आपके देश की मान-मर्यादा के अनुकूल हो ।

मत कहिये—'मैं' । कहिये—'हम' । आपमें से हर कोई अपने देश की जीवित-जागृत मूर्ति बने । अपने सम्बन्ध में आने वाले हरएक व्यक्ति को देश के बारे में सोचने और देशवासियों के प्रति सहानुभूति से भरे होने के लिए तैयार कीजिये । आपमें से हरएक ऐसी शिक्षा पाए कि उसके कामों द्वारा लोग उसके देश का सम्मान करें ।

आपका देश एक है, यह अविभाज्य है, इसके टुकड़े नहीं हो सकते । दूर हो या पास, कोई भी प्रदेश एक दूसरे से भिन्न नहीं है । दूरी या भाषा का भेद आपको एक दूसरे से अलग न कर सके । परिवार का व्यक्ति दूर रहकर भी परिवार का ही रहता है । आपका देश, मानवता के प्रति आपकी सेवाओं का प्रतीक है । आप जितनी सेवा करेंगे, राष्ट्र भी उतनी ही सेवा कर पायेगा, आप सेवा करने में कृपणता दिखलायेंगे तो राष्ट्र कदापि उदार नहीं बन सकेगा । इन प्रश्नों और उनके उत्तरों पर ध्यान दो :—

"आप कौन हैं ?"

"मैं इस राष्ट्र का नागरिक हूँ ।"

"राष्ट्र किसे कहते हैं ?"

"राष्ट्र उस भूभाग को कहते हैं, जहाँ एक सरकार हो ।"

"जब इतनी राज्य सरकारें हैं, तो देश एक राष्ट्र कैसे ?"

"देश एक है, उसकी केन्द्रीय सरकार एक है । देश के अन्तर्गत राज्य या प्रदेश उस तरह हैं, जैसे किसी मकान में भिन्न-भिन्न कमरे । प्रत्येक प्रदेश की सरकार सब काम करने

में स्वतन्त्र है; परन्तु अन्ततः वह केन्द्रीय सरकार का ही एक प्रादेशिक अंग है।"

"राष्ट्रीयता के लिए सबसे मुख्य शर्त क्या है ?"

"राष्ट्रीयता के लिए सबसे मुख्य शर्त राष्ट्रीय एकता है।"

जिन राज्यों में आज आपका देश बँटा हुआ है, वह कोई आम जनता की करतूत नहीं है। वह तो महत्वाकांक्षी राजाओं और नवाबों की, विदेशी शासकों की रचना है। इन राज्यों के विभाजन से आम जनता की क्या भलाई होती है ? केवल कुछ ऊँचे कहलाने वाले खानदानों के अहंकार की तृप्ति होती है। जनता इनको सत्य क्यों माने ? क्या एक राज्य की जनता दूसरे राज्य की जनता से अलग है ? अलगाव का भेदभाव स्वार्थी राजनीतिज्ञों या पूँजीपतियों का फैलाया हुआ है। आपने प्रदेशों या राज्यों की रचना नहीं की। आपने तो ग्रामों या शहरों की रचना की है, जहाँ आपके पूर्वज रहते आए हैं, जहाँ आपकी सन्तानों को रहना है। ग्रामों और नगरों में आपकी आवश्यकता है। आप अपने व्यक्तिगत जीवन को दूसरों की सहकारिता से अपने ग्राम या नगर की बेहतरी में लगा दो बस आपका कर्तव्य पूरा हो गया, देश के ऊँचे उठने में फिर देर न लगेगी। राज्यों के झगड़े बेकार हैं, उनमें समय मत गँवाओ। अर्थात् "राष्ट्र से तात्पर्य उस भाई-चारे से है, जिसमें स्वतन्त्र और समान लोग आपस में भ्रातृ-स्नेह और समान श्रम के सिद्धान्त से बँधे हुए, समान लक्ष्य के लिए कार्य करें।" आपको इस लक्ष्य का ध्यान रखना चाहिए।

राष्ट्र जनता का संगठन होता है। समान अधिकारों के बिना कोई भी देश सच्चे अर्थों में राष्ट्र नहीं कहला सकता। सच्चे अर्थों में वह कोई भी देश राष्ट्र नहीं हो सकता, जहाँ अधिकारों की समानता पर जातिवाद, विशेषाधिकार व वैषम्य

आदि चोट करते हों ? जहाँ जनता की बहुसंख्या की शक्तियाँ तथा योग्यताएँ कुचली जाती हों, उनके काम में रुकावट डाली जाती हो, जहाँ समान सिद्धान्त स्वीकार नहीं किये जाते, वह देश वास्तव में राष्ट्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। वह राष्ट्र-राष्ट्र नहीं है, वह जनता-जनता नहीं है, एक भीड़ भले ही हो, जिसे परिस्थितियों ने इकट्ठा होने पर विवश कर दिया है। उन परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियाँ उन्हें अलग कर देंगी।

क्या आप अपने देश से प्यार करते हैं ? आपको उस प्यार का वास्ता है कि आप हर तरह के विशेषाधिकारों का, हर विषमता का डटकर विरोध कीजिये। अपनी धरती पर स्थान, कुल, जाति आदि के ऊँच-नीच के भेद-भाव को मत पनपने दीजिये, उसका खुलकर विरोध कीजिये और इस बारे में कभी सुलह मत कर कीजिये।

कानून विशेषाधिकार एक ही है और वह है प्रतिभा का, विशेष बुद्धि का। जब प्रतिभा अपने गुणों को लेकर भाइयों की सेवा के लिए आगे आती है, तो उसका विशेषाधिकार हो जाता है। पर यह विशेषाधिकार दोषपूर्ण नहीं; क्योंकि यह ईश्वरीय नियमों के अनुसार है—ईश्वरीय नियमों ने—इस विशेषाधिकार को जन्म दिया है। शक्ति या खानदान के नाम पर जो विशेषाधिकार जताये, उसके आगे हर्गिज़ सिर मत झुकाइये। वंश, जाति या सत्ता का विशेषाधिकार 'अत्याचार' है। इस तरह के अत्याचार का डटकर मुकाबला कीजिये और इसको समूल नष्ट कर डालिये।

आपका देश आपका मन्दिर है। उसमें भगवान् को विराजमान कीजिये। उस मन्दिर की सारी जनता पूजा करे, पूजा करने के सबको बराबर अधिकार हों। देशवासियों में न कोई छोटा हो, न बड़ा। इसके विरुद्ध किसी कानून को मत मानिये। यदि

आप अपने राष्ट्र का अपमान नहीं चाहते तो समता के आधार पर उसकी रचना कीजिये, समता को सबसे बड़ा कानून मानिये और शेष सब विधि-विधानों, नियमों और कानूनों को 'समता' की ही व्याख्या करने दीजिये—संविधान के सभी नियम, समता के नियम की ही शाखा-उपशाखा की व्याख्या करने वाले हों। समता ही सर्वोच्च नियम है। इस प्रकार राष्ट्र के कानून (संविधान) की रचना में सभी अपना-अपना योगदान करें। जनता के किसी एक भाग द्वारा बनाये गये कानून कभी राष्ट्रीय कानून कहलाने के अधिकारी नहीं हो सकते, उन्हें जनता के सभी अंशों के प्रतिनिधियों की स्वतन्त्र और सामूहिक इच्छा से बनाया जाना चाहिए और प्रतिनिधियों का चुनाव भी जनता के एक-एक मनुष्य की स्वतन्त्रता पर आधारित होना चाहिए।

जहाँ जनता का एक विशेष भाग अपने आपको विशेष समझकर कानून बनाता है, वहाँ जनता की सम्पूर्ण भावना उसके साथ कभी नहीं हो सकती। राष्ट्र के कानून सर्वसाधारण की आकांक्षाओं एवं भावनाओं के अनुकूल होने चाहिऐं। राष्ट्रीय कानून में राष्ट्र का हृदय धड़कता हुआ प्रतीत हो; इसीलिये सारा राष्ट्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विधायक या कानून-निर्माता होना चाहिए। जब आप कुछ व्यक्तियों के अभिमान के आगे सिर झुका देते हैं, तब आप राष्ट्र की इच्छा के स्थान पर कुछ लोगों या किसी वर्ग की इच्छा को प्रधान बना देते हैं। किसी वर्ग की इच्छा की बजाय वर्गों के समूह अर्थात् राष्ट्र की इच्छा को सर्वोपरि मानकर चलिये।

पढ़े लिखों में जब तक एक भी आदमी अनपढ़ है, जब तक एक भी आदमी गरीबी में सड़ता है, बेकार रहता है, तब तक आपने राष्ट्र की उस रूप से रचना नहीं की, जिस रूप में करनी चाहिए थी। "राष्ट्र सबका और सबके लिए" यही

आपका नारा और लक्ष्य होना चाहिए ।

केवल भूमिभाग ही 'राष्ट्र' नहीं है। कोई विशेष भूमिभाग तो 'राष्ट्र' की केवल 'नींव' है। 'राष्ट्र' तो वह भावना है, जो 'नींव' से ऊपर उठकर भवन का स्वरूप ग्रहण करती है। यह तो प्रेम की भावना है, भाई चारे की भावना है, जो उस भूमिभाग के सभी निवासियों को परस्पर प्रेम में बाँधती है।

जब तक राष्ट्रीय जीवन में एक भी आत्मा वोट या मत देने के अधिकार से वंचित रखी जाती है, तब तक आप यह कैसे कह सकते हैं कि "राष्ट्र सबका और सबके लिए।"

'मत', 'शिक्षा' और 'काम' (Vote, Education and Work) ये तीन ही राष्ट्र के स्तंभ हैं।

आपके राष्ट्र के लक्ष्य की उच्चता के अनुसार ही आपके कर्तव्य का निर्धारण हो सकता है। आपका तो इतना कर्तव्य है कि आप अपने कर्म को अहंकार, असत्य और राजनीतिक छल से रहित रखें। राजनीतिक छल को कुछ लोगों ने कूटनीति का नाम देकर सजाने की कोशिश की है; पर वास्तव में यह धोखा है।

आपकी राष्ट्रीय सरकार आपके श्रम पर आश्रित होगी। आपका श्रम इस बात पर आश्रित होगा कि आपमें राष्ट्रीय भक्ति कितनी है। यदि आपकी राष्ट्र सेवा स्वार्थ-साधना या अवसरवाद के लिए होगी तो राष्ट्र ऊँचा उठ चुका !

यूरोप में ऐसे देश हैं, जो अपने भीतर तो स्वतन्त्रता को पवित्र समझते हैं; परन्तु बाहर अर्थात् विदेशों में उसे पवित्र नहीं मानते। अपने लिए उसे आवश्यक मानते हैं; पर औरों के लिए आवश्यक नहीं मानते। उनकी यह दुरंगी नीति अब अधिक देर नहीं चल सकती। ऐसे भी लोग हैं, जो कहते हैं— "सत्य एक बात है और उपयोगिता दूसरी बात है। सिद्धान्त

एक बात है और व्यवहार दूसरी बात है ।" जो देश इस सिद्धान्त पर चलेंगे, वे शीघ्र ही दूसरे देशों से अलग रह जाएँगे, वे दूसरों का दमन करेंगे और उनके अपने यहाँ अराजकता फैल जाएगी

आपके देश का धर्म या मिशन क्या है ? वह है—ईश्वर केवल एक है, सत्य केवल एक है, विश्वास केवल एक है। राजनीतिक जीवन का भी धरती पर एक ही नियम या कानून है। फौजें किसी राष्ट्र की रक्षा नहीं करतीं, बल्कि किसी राष्ट्र की जनता की स्वतन्त्रता और संगठन उस राष्ट्र की रक्षा करते हैं। क्या आप अपने लोभ के लिए राष्ट्र का कार्य करेंगे ? क्या आप किसी स्वेच्छाचारी राजा के ऐश्वर्य के लिए राष्ट्र का कार्य करेंगे ?—कभी नहीं, आपमें उतनी ही वीरता भी होनी चाहिए, जितना विश्वास है। आपको सारे संसार से कहना होगा—'समता' ही हमारे राष्ट्र के हृदय की धड़कन है।

आपके कार्यों से आपके राष्ट्र के जीवन में सौन्दर्य आएगा, शक्ति आएगी, निर्भयता आएगी, उसके सन्देह दूर होंगे। आपके राष्ट्र के जीवन का आधार जनता होगी । जनता की शक्ति राष्ट्र की शक्ति होगी। वह सबकी सामूहिक कामना से स्फूर्त होगी। वह शक्ति ही उस लक्ष्य को पूर्ण करेगी, उस कार्य को सम्पूर्ण करेगी, जिसे ईश्वर ने पूरा करने के लिए राष्ट्र के हाथों में सौंपा है; और क्योंकि आप मानवता के लिए मर-मिटने को तैयार रहेंगे, इसलिए आपके राष्ट्र का जीवन अमर हो जाएगा।

———

परिवार के प्रति

परिवार हृदयों का देश है। यहाँ हृदय निवास करते हैं और हृदय ही शासन करता है। परिवार में एक देवता है, जो अपने गौरव के आश्चर्यजनक प्रभाव से, मधुरता से, कर्तव्यों को कम कष्टकर बनाता है और दुखों की कटुता को कम कर देता है। शुद्ध आनन्द, जिसमें दुख लेशमात्र भी नहीं है, उसका यदि मनुष्य कभी इस धरातल पर अनुभव करता है तो वह उसके लिए इसी देवता के प्रति कृतज्ञ हैं। जो परिस्थियों की क्रूरता के कारण परिवार के पवित्र जीवन को बिताने का अवसर न पा सका, जिसे इस देवता के पंखों की छाँह का सुख न मिल पाया, उसकी आत्मा पर विषाद की छाया निरन्तर छाई रहती है। उसके हृदय में एक रिक्तता रह जाती है, जो किसी तरह भी भरी नहीं जा सकती। अरे परिवार-सुख से सुखी लोगों! ईश्वर का धन्यवाद कीजिये, जिसने उस देवता को पैदा किया, जिसकी करुणा भरी छाया में सुख और सान्त्वना भरी है। यह मत समझिये कि आप आनन्द और सान्त्वना परिवार से बाहर अधिक पा सकते हैं क्योंकि परिवार से प्राप्त होने वाले आनन्द और उससे मिलने वाली सान्त्वना में वे अच्छाइयाँ भरी हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। 'निरन्तरता' उन अच्छाइयों में से एक है। परिवार का स्नेह अपने एक प्रकार के सूक्ष्म तारों से आपके चारों ओर लिपट कर अदृश्य रूप में आपको घेरे रहता है, जैसे एक बेल वृक्ष को आवृत्त किये हो। परिवार के

जन हर घंटे और हर मिनट आपकी देखभाल रखते हैं। वे मौनरूप में आपके जीवन के इर्द-गिर्द ओत-प्रोत रहते हैं। बहुत बार आपको इस बात का अनुभव नहीं होता। क्योंकि वह आपके जीवन का ही एक अंग बन जाता है परन्तु जब आप परिवार से बिछुड़ते हैं, तब उसका अभाव आपको चुभता है। उस समय आपको उस अदृश्य सत्ता का भान होता है। उस समय आप अपने जीवन के लिए उसे अत्यन्त, अनिवार्य मानते हैं। उस समय आप बेचैन और अशान्त होकर भटकने लगते हैं। हो सकता है कि आपको कहीं से थोड़ी बहुत सान्त्वना उस समय भी मिल जाय; परन्तु उस सान्त्वना और परिवार की क्षण-प्रतिक्षण मिलने वाली सान्त्वना में बहुत अन्तर है। घर की वह शान्तिमयी सान्त्वना ऐसी है, जिसे झील की लहरों से उपमा दी जा सकती है, जिसे विश्वास भरी नींद से तुलना दी जा सकती है और जिसे उस नींद से समता दी जा सकती है, जो माँ की छाती पर बालक को आती है। परिवार का देवता है—नारी। माता, पत्नी या बहन—नारी हर रूप में जीवन का अनुराग है। वह स्नेह की श्रान्तिहर मधुरता है, वह मानवता पर अनन्त की करुणा की साकार मूर्ति है। नारी में, पीड़ा पर विजय पाकर सान्त्वना प्रदान करने की अथाह शक्ति होती है। इसके साथ ही नारी भविष्य की जन्मदात्री है।

माँ का प्रथम चुंबन बच्चे को प्रेम का पाठ पढ़ाता है। मनुष्य जिस स्त्री से प्यार करता है, उसका प्रथम और पवित्र चुंबन मनुष्य में जीवन के प्रति आशा और विश्वास का दान करता है। प्यार और विश्वास ही मनुष्य में पूर्णता को प्राप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न करते हैं, जिनसे कदम-कदम आगे बढ़कर मनुष्य भष्विय का निर्माण करता है, जिसका सजीव प्रतीक है शिशु। शिशु—हमारे और आने वाली पीढ़ी के बीच की कड़ी। नारी

के द्वारा ही परिवार अमरता की ओर लक्ष्य निर्देश करता है, क्योंकि नारी में प्रजनन की दैवी-शक्ति है।

इसलिए परिवार को पवित्र समझिये, इसे जीवन की अविभाज्य या अटूट शर्त समझिये। परिवार पर होने वाले प्रत्येक आक्रमण का मुकाबला करो, चाहे आक्रमणकारी मनुष्य हों या दार्शनिक विचार। ऐसे लोगों के विचारों का डटकर खंडन कीजिये, जो त्रुटियों को दूर करने के स्थान पर परिवार की संस्था को ही नष्ट करने का समर्थन करते हैं।

'परिवार' ईश्वर की कृति है, मनुष्य की नहीं। मनुष्य की शक्ति इसे नष्ट भी नहीं कर सकती। देश की ही तरह, बल्कि देश से भी बढ़कर-परिवार जीवन का एक आवश्यक भाग है। 'परिवार' राष्ट्र से भी बढ़कर है, इसका तात्पर्य यह है कि हो सकता है कोई ऐसा दिन आजाय, जब राष्ट्रों की सीमाएँ हट जाएँ और सारे संसार के मानव एक होकर एक ही शासन के नीचे मिलजुलकर जीवन बिताने लगें; परन्तु परिवार तो फिर भी रहेंगे ही। 'परिवार' की संस्था कभी नष्ट नहीं हो सकती। परिवार मानवता का पालना है। मनुष्य-जीवन के प्रत्येक अंग के समान इसका भी विकास होना चाहिए। परिवार की प्रवृत्तियाँ, आकांक्षाएँ, एक काल से दूसरे काल में उत्तरोत्तर अवश्य ही सुधरती रहनी चाहिएँ; परन्तु परिवार की आकांक्षाओं को कभी कुचलना या दबाना न चाहिए।

परिवार को अधिक से अधिक पवित्र बनाते जाने में और इसे राष्ट्र के निकटतर ले आने में ही आपके जीवन की सार्थकता है। इसी में आपके कर्तव्य की पूर्ति है। जिस तरह आपका देश सम्पूर्ण विश्व-मानवता का अंग है, उसी तरह आपका परिवार संपूर्ण देश का अंग होना चाहिए। राष्ट्र का काम है मनुष्यों को शिक्षित बनना। परिवार का काम है मनुष्यों को नाग-

रिकता की शिक्षा देना। परिवार और देश एक ही रेखा के दो अन्तिम छोर या सिरे हैं; और जब ऐसा नहीं होता, तब अभिमान के कारण परिवार का पतन हो जाता है। अभिमान जितना ही उबरने वाला तथा कठोर होगा, उतना ही वह स्नेह को नष्ट करने वाला होगा। अहंकार द्वारा परिवार लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है, वह राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य पालन के मार्ग से भ्रष्ट होकर भटक जाता है।

आजकल परिस्थितियों के कारण परिवारों में अहंकार का शासन देखा जाता है। सामाजिक परिस्थितियाँ व कुरीतियाँ इसकी जन्मदात्री हैं।

इस समाज में जहाँ जासूस हैं, जहाँ पुलिस है, जहाँ कारागार हैं, जहाँ फाँसी है, ऐसे समाज में माता काँपती हुई अपने बच्चे को यही शिक्षा देने के लिए बाध्य है कि वह इससे सावधान रहे और उसका विश्वास न करे। वह अपनी सन्तान को यही शिक्षा देगी—"सावधान ! जो मनुष्य तुम्हें राष्ट्र की बातें सुनाता है, स्वतंत्रता की बातें करता है, भविष्य की बातें करता है, तुम्हें अपनी छाती से लगाता है, उससे बचकर रहो। राष्ट्र आदि की बातें छोड़ो, तुम अपने काम से काम रखो।" इस तरह की सयानी सीख देने वाली असंख्य माताएँ सामाजिक परिस्थितियों ने ही बना डाली हैं।

जिस समाज में योग्यता या गुणी होना भय का कारण हो, जहाँ धन ही शक्ति और सत्ता का एकमात्र आधार हो, सुरक्षा का एकमात्र कारण हो, आत्मरक्षा का एक ही साधन हो, वहाँ कौन ऐसी माँ होगी और कौन ऐसा पिता होगा, जो बच्चे को सत्य की शिक्षा देगा। वह तो उसे यही बताएगा "खबरदार ! पैसा पैदा करो। इसी में तुम्हारी रक्षा है। अकेला सत्य तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। दूसरों की शक्ति और भ्रष्टाचार के आगे

तुम्हारा सत्य टिक नहीं पायेगा।" परन्तु फिर भी यदि आप सभी मिलकर समाज को बदलना चाहें, तो बदल सकते हैं। जब तक वह दिन नहीं आता कि सारा समाज सत्य का सम्मान करने लगे तब तक समाज को वैसा स्वरूप देने का आन्दोलन चलाना ही आपका कर्तव्य है।

नारी जाति से स्नेह करो, उसका सम्मान करो। उससे केवल सान्त्वना पाने की इच्छा न करो; बल्कि शक्ति, स्फूर्ति पाने के साथ-साथ अपनी बुद्धि और चरित्र संबन्धी शक्तियों को दुगना बढ़ाने की सामर्थ्य भी प्राप्त करो। अपने मन से इस बात का विचार निकाल दो कि पुरुष स्त्री से ऊँचा है। शताब्दियों के इस मिथ्या विश्वास ने मानवता को बड़ी हानि पहुँचाई है। पहले तो स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया और फिर उन पर यह दोष लगाकर कि उनमें बुद्धि की कमी है, उन्हें पुरुष से हीन बता दिया गया। पर अब समय आ गया है, जब स्त्री को पुरुष के बराबर माना जाय, बिल्कुल बराबर। स्त्रियों के प्रति प्रत्येक देश के लोग समान रूप से अपराधी हैं। स्त्रियों को पुरुषों से हीन समझने के विचार की छाया भी आप के पास न फटकनी चाहिये। ईश्वर की दृष्टि में इससे बढ़कर और कोई भीषण पाप नहीं हो सकता। परमेश्वर की दृष्टि में न कोई स्त्री है, न पुरुष। पिता तो दोनों को समान रूप से अपनी सन्तान मानता है। उसकी दृष्टि में दोनों बराबर हैं।

सामाजिक प्रवृत्ति, अध्ययन की शक्ति और प्रगति की योग्यता पुरुष और स्त्री में बिल्कुल समान है। दोनों एक बराबर मानव जीव हैं और पशुओं से अलग हैं। जब स्त्री और पुरुष समान हैं, तो दोनों के कर्तव्य और अधिकार भी समान हैं। एक पेड़ के तने से, जैसे दो शाखाएँ निकलें, उसी प्रकार पुरुष और स्त्री एक ही मानवता से उद्भूत हुए हैं। उनमें कोई विषमता

या विभिन्नता नहीं है। परन्तु जैसा कि प्रायः होता है दो पुरुष भी आपस में भिन्न प्रवृत्तियों वाले होते हैं। पर क्या इसी कारण हम उन्हें एक दूसरे से ऊँचा और हीन मान लें ?

पुरुष और स्त्री के कर्तव्य और अधिकार एक हैं, केवल उन के काम अलग-अलग हैं। अतएव नारी को अपने समान-बिल्कुल समान समझिए। पुरुष और नारी मानवतारूपी वीणा के दो तार हैं, जिनमें से एक के भी बेसुरे होने पर स्वर बेसुरा निकलेगा। दोनों के काम समान रूप से महत्वपूर्ण व पवित्र हैं, दोनों को ईश्वर ने संसार में आत्मा के रूप में भेजा है।

अपनी पत्नी को अपना साथी समझिए। उसे अपने हर्ष, विषाद, सुख-दुख, अपनी आकांक्षा, विचार, अध्ययन, अपने प्रयत्न और सामाजिक सम्बन्धों का संगी समझिए।

सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में भी बिल्कुल उसे अपने बराबर समझिये। दम्पतियों एक हो जाओ। दोनों मानव आत्मा के दो पक्ष हो। दोनों एक होकर ही जीवन के अवश्य लभ्य लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हो। ईश्वर ने मानवता को जन्म दिया। मानवता ने अपने आपको नर और नारी के रूप में प्रकट किया ; नहीं-नहीं, नारी और नारी के रूप में प्रकट किया।

बच्चों को प्यार कीजिये जिन्हें ईश्वर ने आपके पास भेजा है। परन्तु बच्चों को सत्यतापूर्ण, प्रगाढ़ और सतर्क प्यार कीजिये उन्हें मूढ़, निष्प्राण, विवेकहीन, अन्धा प्यार मत कीजिये, नहीं तो आपका अहंकार बढ़ेगा और बच्चों का जीवन नष्ट हो जायगा। जिसे आप सबसे पवित्र समझते है, आपको उसकी सौगन्ध, यह कभी न भूलो कि आने वाली पीढ़ी के निर्माण की आप पर जिम्मेदारी है। इन आत्माओं के प्रति, जो आपको सौंपी गई हैं, आपकी जिम्मेदारी है। इसे बुद्धिपूर्वक निभाएं तो ही सफल हो सकते हैं।

जीवन के आनन्द और लोभ लालच में उनको मत फँसाइये बल्कि उनमें जीवन-शक्ति भर दीजिये। उन्हें कर्तव्य सिखलाइये, उन्हें चरित्र के नियम और कानून सिखलाइये, उन्हें उन नियमों से परिचित कराइये, जो जीवन का शासन करते हुए उसे चलाते हैं।

धर्महीनता की आँधी में, कुछ ही पिता और कुछ ही माताएँ अपने कर्तव्य की गुरुता, पवित्रता और श्रेष्ठता को समझते हैं। कुछ एक ही माताएँ व कुछ ही पिता समझते हैं कि बच्चों के मस्तिष्क में दुर्बलता न आने दें। दुर्बलता यही कि कर्तव्यों से अधिकार बढ़कर हैं, कि कर्तव्यों से स्वार्थ बढ़कर हैं। अपने बच्चों को कष्ट सहकर निर्माण करना सिखालाइये। उन्हें धनी लोगों के ऐबी लड़कों की नकल करने से बचाइये। उन्हें मिथ्या जीवन के दोष खोलकर समझाइये। जो सुख को ढूँढ़ते हैं, जो मज़ा लेना ही जीवन का तात्पर्य मानते हैं, जो हर बात में अपने स्वार्थ की सिद्धि चाहते हैं, लोग उन्हें शीघ्र ही घृणा करने लगेंगे।

जब धनिकों के बेटों को स्वार्थ भावना के कारण पतन के गढ़े में गिरना पड़ेगा तो गरीबों के बेटे अगर इस रास्ते पर चले तो उनके पतन का तो ठिकाना ही क्या ? उन्हें तो निरन्तर श्रम करते रहने में ही आनन्द मानना होगा; नहीं तो उनका जीवन एक दिन नहीं चल सकता, उनका सम्मान एक पल नहीं टिक सकता।

आप अपने बच्चों को अपने शब्दों और अपने कर्मों से समान रूप से शिक्षा दे सकते हैं। आप उनके सामने अपना उदाहरण पेश करके उन्हें ठीक रास्ते पर चला सकते हैं। आपके बच्चे आपके ही समान बनेंगे। यदि आप भ्रष्टाचारी हैं तो वे भी भ्रष्टाचारी बनना पसन्द करेंगे। यदि आप सदाचारी रहेंगे तो वे भी सदाचारी बनना अच्छा समझेंगे। यदि आपमें स्पष्टवादिता,

सत्यता और कर्तव्यपालन का भाव नहीं है, तो आपके बच्चे कैसे ईमानदार, स्नेहपूर्ण और मानवतापूर्ण बन सकेंगे ? यदि आप अपने भाइयों के प्रति दया-भावना से पूर्ण नही हैं, तो आप के बच्चों में वह भावना कहाँ से आएगी ?

यदि आपका जीवन धोखे-धड़ी से भरा है तो आपके बच्चे अपने स्वाभाविक भोलेपन को कितने दिन तक बनाए रख सकेंगे ? यदि आप चरित्र की दृष्टि से गिरे हुए काम करेंगे तो आप ऐसी आशा कैसे कर सकते हैं कि आपके बच्चे गालियाँ न बकें ? आप तो सजीव आदर्श हैं, जिन्हें आपके बच्चे हर समय देखते हैं। वे आपकी नकल करके समझते हैं कि ठीक कर रहे हैं। उन का हृदय गीली मिट्टी की तरह है, उस पर जैसा ठप्पा लगेगा वैसा उसका स्वरूप बनेगा। उन्हें जिस साँचे में ढालेंगे, उसी में वे ढलेंगे। यह आप पर आश्रित है कि आपकी सन्तानें, मानव बनें या दानव। आप अपने शब्दों द्वारा भी उन्हें शिक्षा दे सकते हैं। उनसे राष्ट्र की बातें कीजिये। कैसा यह देश था, और कैसा होना चाहिए।

शाम के समय माँ की मुस्कान जब बच्चों का स्वागत करती है और वे निश्छल भाव से उसकी गोद में आ बैठते हैं, तब वह दिन-भर के श्रम की थकावट को भूल जाती है। उस समय माता यदि उन्हें साधारण लोगों के महान् कार्य कह सुनाती है, तो बच्चे बड़े ध्यान से उसे सुनते हैं। अपने ओठों से बच्चों को सीखने दो। उन्हें श्रम, कष्ट सहन, उद्यम और साहस से अपने देश की कायापलट करने की शिक्षा दो। उनके हृदय में अत्याचारी के प्रति घृणा का भाव न भरो; बल्कि उसके सुधार करने की इच्छा भरो। उनके कोमल हृदयों में विद्रोह भरो, पर किसके प्रति ? उनके प्रति जो अपनी शक्ति के बल पर सत्ता को हथियाते हैं और दूसरों के अधिकार छीनकर अपनी इच्छाओं

ग्रौर स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। उन्हें विशेषाधिकार की व्याख्या बताइये कि विशेषाधिकार एक ही है—विशेष प्रतिभा और योग्यता का अधिकार। इसके सिवा जन्म, जाति, रुपया, सत्ता या गिरोह आदि के अधिकार झूठे हैं, मानवता विरोधी हैं। सही राष्ट्रीय शिक्षा के बिना सच्चे राष्ट्र का उदय नहीं हो सकता।

अपने माता-पिता से प्यार कीजिये। अपनी संतानों को यह कभी मत भूलने दीजिये कि आपके माता-पिता के प्रति उनके भी कुछ कर्तव्य हैं। नए सम्बन्ध प्रायः पुराने सम्बन्धों को भुला देते हैं ; पर ऐसा होना अनुचित है। अपने माता-पिता को उन की मृत्यु पर्यन्त बड़े मान-सम्मान से रखिये। उन्हें कभी ऐसा अनुभव मत होने दीजिये कि वे आपको खो चुके हैं। अपने निरन्तर के प्यार भरे बर्ताव से उनकी आत्मा को सुगंधित करते रहिये। आप जिस प्रकार का बर्ताव अपने मात-पिता से करेंगे, वैसा ही बर्ताव आपकी सन्तान आपसे करेगी।

माँ-बाप, भाई-बहन, बच्चे सब एक ही परिवार की भिन्न-भिन्न शाखाएं हैं, जो भिन्न-भिन्न दिशाओं में बढ़कर फल-फूल-कर एक ही वृक्ष की शोभा बढ़ाते हैं।

परिवार को पावन प्रेम से पवित्र बना दीजिये। अपने घर को एक मन्दिर बनाइये, जहाँ आपका परिवार सारे देश के लिए अपने त्याग ग्रौर बलिदान द्वारा निरन्तर कर्मरत रहना सीखे। आपका परिवार संकटों में प्रत्येक परीक्षा के अवसर पर सबल सिद्ध हो ग्रौर हर तूफ़ान में आप उसका ऐसा मार्ग-दर्शन करें कि वह सफलता पूर्वक उत्तीर्ण हो सके।

———

स्वयं के प्रति

आपके जीवन की सत्ता है, अतः जीवन के नियम की भी सत्ता है। जीवन के नियम के अनुसार अपना विकास करना, उसी के अनुसार कार्य करना, उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करना आपका एकमात्र कर्तव्य है।

पहले बताया जा चुका है कि भगवान् ने आपके जीवन के नियम का ज्ञान कराने के लिए दो साधन आपको दिये हैं—पहला—आपकी आत्मा की आवाज़, और दूसरा—मानवता की आवाज़; अर्थात् जनसाधारण के विश्वास की आवाज़। यह भी कहा जा चुका है कि जब कभी आप अपनी आत्मा से प्रश्न करते हैं और उसकी आवाज़ में जनता की आवाज़ से समरसता का स्वर संगीत पाते हैं, तो समझिये कि निश्चय ही आपको सत्य की प्राप्ति हो गई है।

आजकल यह बड़ा कठिन हो गया है कि जनता या मानवता की आवाज़ तक इतिहास के द्वारा पहुँचा जाय। एक तो उत्तम पुस्तकों का अभाव है, दूसरे, आपके पास समय का अभाव है। लेकिन वे लोग, जो अपनी योग्यता तथा अन्तःकरण की दृढ़ता द्वारा इतिहास के अध्ययन को उत्तम रूप में प्राप्त कर लेते हैं और मानवता के विज्ञान को जानते हैं, वे जीवन के नियम को जान लेते हैं। उनके अनुसार मनुष्य स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है और इसे शिक्षित किया जा सकता है। इसे यह शिक्षा दी जा सकती है कि भगवान् एक है। एक व्यक्ति या मनुष्य

मनुष्य के लिए तथा सामूहिक मानवता के लिए एक ही जीवन का नियम या कानून है। इस कानून या नियम का मूल आधार है—'प्रगति'। इस सच्चाई का आज कोई भी विरोध नहीं करता, क्योंकि मनुष्य के ज्ञान की सभी शाखाएँ इसका समर्थन करती हैं। प्रगति ही वह आधार है, जिस पर मनुष्य के सब कर्तव्य बनाये गये हैं, साथ ही आपके सब अधिकार भी प्रगति के ही आधार पर बनाये गये हैं। आपके अधिकारों की परिभाषा करनी हो तो इस प्रकार होगी—"आपका अपने कर्तव्यों को बे रोक-टोक करने का अधिकार।"

आप स्वतंत्र हैं, अतः अपने आपको स्वतंत्र अनुभव करना होगा। बुराइयों के रास्ते पर मत चलिये। जो कोई बुराई के रास्ते पर चलता है, वह अपने अन्तरतम की गहराइयों में आत्मनिन्दा, धिक्कार व बेचैनी पाता है। उसकी आत्मा से आवाज़ आती है—"आपने अच्छाई का, नेकी का, पुण्य का रास्ता क्यों छोड़ा ?"

आप स्वतन्त्र हैं, और इसीलिए आपकी कुछ जिम्मेदारियाँ हैं। नैतिक स्वतन्त्रता से ही राजनीतिक स्वतन्त्रता का जन्म हुआ है। आपका कर्तव्य है स्वाधीनता को पाना, अपने लिए और दूसरों के लिए। इस स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने का किसी को अधिकार नहीं।

आप शिक्षा पाने के योग्य हैं, विद्या के पात्र हैं। आपमें से हरएक में कुछ एक विशेष योग्यताएँ हैं, कुछ बुद्धि की शक्तियाँ हैं, कुछ आचार सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ हैं। उस सबको शिक्षा ही जीवन तथा कर्मठता प्रदान कर सकती है। यदि शिक्षा न मिले तो आपकी वे शक्तियाँ निष्क्रिय और अकर्मण्य रह जाएँगी। अथवा उनका नियमित विकास न हो पाएगा।

शिक्षा या विद्या आत्मा का भोजन है। जिस तरह खुराक

न मिलने से शरीर का विकास नहीं हो पाता, उसी प्रकार आत्मिक भोजन न मिलने से आत्मा का विकास नहीं हो पाता। आचार सम्बन्धी तथा बुद्धि सम्बन्धी जीवन के लिए बाहर के प्रभाव आवश्यक हैं, जिनके बिना आचार तथा बुद्धि का पूरी तरह विकास नहीं हो सकता। बुद्धि विचारों को काफ़ी सीमा तक ग्रहण करती है, तब जाकर वह विकसित हो पाती है। बुद्धि, दूसरों से विचारों को नहीं; बल्कि स्नेहभाव तथा आशा आकांक्षाओं को भी ग्रहण करती है। व्यक्ति का जीवन एक पौधे की तरह पनपता है। जैसे एक पौधा अपने विशिष्ट प्रकार के गुणों से युक्त होकर बढ़ता है, इसी तरह व्यक्ति भी बढ़ता है उसके चरित्र की व्यक्तिगत विशेषताएँ उसके साथ-साथ बढ़ती हैं। चाहे भूमि और भोजन एक समान ही मिलता हो। व्यक्ति मानवता का अंकुर है। वह मानवता से अपना भोजन प्राप्त करता है, मानवता की शक्ति से वह अपनी शक्ति को पुनर्जीवित करता है। भोजन देने तथा पुनर्जीवन प्रदान करने का यह कार्य शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा ही व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप में या परोक्ष रूप में मानव-जाति की उन्नति का रहस्य बतलाती है। इसलिए शिक्षा, न केवल आपके जीवन की आवश्यकता है; बल्कि यह आपका अपने मानव भाइयों से पवित्र संसर्ग भी कराती है, उनसे भी जो पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन बिता चुके हैं और कर्म कर चुके हैं। इसलिए आपको यथाशक्ति आचार सम्बन्धी तथा बुद्धि-सम्बन्धी शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी है। दोनों प्रकार की आपको ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी है, जिससे आपके अन्दर उन सब विषयों के ज्ञान का विकास हो, जिन्हें भगवान् ने बीज रूप में आपके अन्दर रख दिया है। शिक्षा आपके व्यक्तिगत जीवन का मानवता के सामूहिक जीवन से सम्बन्ध स्थापित करेगी।

शिक्षा जल्दी से जल्दी प्राप्त कीजिये ताकि आपका व्यक्तिगत जीवन मानवता के सामूहिक जीवन में शीघ्र से शीघ्र जुड़ जाय। इसी के लिए भगवान् ने आपको सामाजिक जीव बनाया है। निम्न कोटि के जीव अर्थात् मनुष्य से नीची योनि के जीव अपने व्यक्तित्व को लेकर ही जीवित रह सकते हैं। वे सीधे प्रकृति से सम्बन्ध रखते हुए जीवन बिता सकते हैं; परन्तु मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता।

हर कदम पर मनुष्य को मनुष्य की सहायता चाहिये। अपने मनुष्यों की सहायता के बिना आप अपने जीवन की साधारण से साधारण आवाश्यकता को भी पूर्ण नहीं कर सकते। यद्यपि आप अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ हैं; तथापि वह केवल सहकारिता और संगठन के कारण ही है। जब आप अकेले होते हैं, तब बहुत से पशुओं की अपेक्षा आपकी शक्ति कम हो जाती है, आप दुर्बल हो जाते हैं और अपना विकास करने की आपमें शक्ति नहीं रह जाती, यहाँ तक कि जीवन की स्थिति में भी सन्देह होने लगता है।

आपकी सभी श्रेष्ठतम भावनाएँ तथा आकांक्षाएँ, जैसे—देशभक्ति, गौरव, दूसरों से प्रशंसा पाना—इन सबसे यह सिद्ध होता है कि आपके अन्दर जन्म से ही यह स्वभाव है कि आप अपने जीवन को अपने चारों ओर फैले लाखों मनुष्यों के जीवन में घुला-मिला डालें। सार यह है कि आप सहकारिता के लिए उत्पन्न हुए हैं। संगठन से आपकी शक्ति सौ गुना बढ़ जाती है। दूसरों के विचार आपके अपने बन जाते हैं। दूसरों की उन्नति आपकी उन्नति बन जाती है। मनुष्य-परिवार अपने स्नेह के हाथ से आपको उठाता है, आपका सुधार करता है, आपके स्वभाव को पवित्र करता है, आपके अन्दर एकता की भावनाएँ भर देता है।

मानव भाईयों से जितना आपका संसर्ग विस्तृत, घनिष्ठ और विशाल होगा, उतना ही आप व्यक्तिगत उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ेंगे।

सबके सामूहिक काम और प्रयत्न के बिना जीवन के नियम की पूर्णता कभी प्राप्त नहीं की जा सकती। हर महान् कदम आगे बढ़ाने के साथ, हर खोज के साथ, इतिहास बतलाता है, कि मनुष्यों का विशाल और विस्तृत संगठन बनाया जाता रहा है। जनता और जनता में विस्तृत सम्बन्ध स्थापित किया जाता रहा है। आप प्रगतिशील प्राणी हैं। प्राचीन काल में प्रगति शब्द मानवता के लिए पवित्र हो गया है। प्रगति के अन्दर सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक उत्थान आ जाता है।

प्राचीन काल में मनुष्य भाग्य में विश्वास रखता था। वह उसको अद्‌भुत दैवी शक्ति के रूप में स्वीकार करता था, जो मनमानी करती है, जो रचना और नाश का चक्कर बारी-बारी से चलाती रहती है। पुराने लोगों का विश्वास था कि मनुष्य इस धरती पर कुछ स्थायी और टिकने वाला फल पाने में असमर्थ है। वह तो जन्म लेता है, युवा होता है, शक्ति प्राप्त करता है और फिर बूढ़ा होकर मर जाता है। इस तरह वह जन्म-मरण के चक्कर में भटकता ही रहता है, निरन्तर यह चक्कर चलता ही रहता है।

पुराने लोगों के पास जितना संकीर्ण-सा ज्ञान का क्षितिज था, उसी के बल पर वे समझते थे कि "मनुष्य जाति एक संख्या या भीड़ का नाम है। इसके जीवन का कोई नियम या कानून नहीं है। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार जीवन की रचना करता है।" इस तरह के सिद्धान्तों को मानने का परिणाम यह हुआ कि लोग अपने टूटे-फूटे ज्ञान के बल पर

पड़े रहते थे और विशेष अध्ययन या खोज करके अपने विचारों को बदलने का प्रयत्न नहीं करते थे। इसी का परिणाम था कि लोग जहाँ प्रजातंत्र राज्य में रहते थे, वे प्रजातन्त्री बन जाते थे, जो किसी स्वेच्छाचारी शासक के गुलाम थे, वे गुलाम ही बने रहते थे। जब भाग्य ने ही सारा निपटारा करना है, तो मनुष्य को हाथ पाँव हिलाने की क्या आवश्यकता है ?

ईसा के धर्मप्रचार ने इस प्रकार के भाग्यवाद को दूर करने का प्रयत्न किया। ईसाई लोग भाग्य की जगह अदृश्य को मनुष्यों का रक्षक मानने लग गए। परन्तु सम्पूर्ण मानवता की सामूहिक एवं संगठित उन्नति का विचार उनके भी मस्तिष्क में न आया था। वे भगवान की कृपा से किसी मनुष्य के रूप में भगवान् के अवतार की कल्पना करते थे ; परन्तु भगवान् से मानव तक बीच में मानवता का विचार उन्हें न हो पाया। वे धरती के जीवन को केवल स्वर्ग तक पहुँचने का उपाय मानते थे; इसीलिए सांसारिक जीवन के त्याग का उपदेश भी करते रहे। उन के विचार में मनुष्य उदात्त विचारों तथा विश्वास के बल पर स्वर्ग में जा चढ़ेगा।

ईसा से १३ सौ वर्ष बाद इटली में दांते नामक एक पुरुष हुआ। उसने कहा—

"ईश्वर एक है। ब्रह्माण्ड ईश्वर की कल्पना है। सारा विश्व एक है। सब पदार्थ ईश्वर के बनाये हैं। सब पदार्थ और जीव अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करते हैं, जिसके लिए उनकी रचना की गई होती है। मनुष्य सब जीवों में सर्वोत्तम है। ईश्वर ने अपनी प्रकृति का सर्वोत्तम अंश, किसी अन्य प्राणी की अपेक्षा मनुष्य को अधिक दिया है। ईश्वर से जो कुछ प्राप्त होता है, वह मानव को पूर्ण बनाने के लिए है। पूर्णता की शक्ति मनुष्य में असीम है। मानवता एक है। ईश्वर

ने कुछ भी व्यर्थ नहीं बनाया ; और क्योंकि मानवता एक है; इसलिए सभी मनुष्यों का उद्देश्य एक होना चाहिए और उस उद्देश्य की पूर्ति सबके एक साथ परिश्रम करने से ही होगी। इसलिए मनुष्य जाति को अवश्य ही संगठित होकर काम करना चाहिए, जिससे कि सब की बौद्धिक शक्ति एकत्र होकर, विचार और कार्य के क्षेत्र में उच्चतम सफलताओं को प्राप्त कर सके। इसीलिए मनुष्य के लिए एक विश्वजनीन धर्म की आवश्यकता है।"

इस प्रकार के विचार के बीज एक बार बुद्धि में बो दिये जायें तो कभी भी निष्फल नहीं जाते। समय आता है, जब इन विचार-बीजों का महान् वृक्ष बन जाता है और वह अपने फल लाता है।

प्रगति जीवन का नियम है, यह बात इतिहास के अध्ययन से सिद्ध होती है। विज्ञान भी इसका समर्थन करता है। व्यक्ति की प्रगति—मानवता की प्रगति। ईश्वर एक है। उसका कानून एक है। मानवता अपनी सत्ता के आरम्भ से ही उस कानून का पालन करती आ रही है। परन्तु वह क्रम-क्रम से इस कानून का ज्ञान पाती आई हैं। सत्य कभी भी अचानक या एकदम नहीं प्रकट हुआ। क्रमिक प्रयत्न के उपरान्द सत्य का एक अंश प्रकाश में आता है। समय-समय पर मानव-जीवन में भाँति-भाँति के सुधार होते रहे और मानव को पूर्णता के पथ पर आगे बढ़ाते रहे। धर्म की भावना और विचार भी सदा प्रगतिशील हैं। विश्वास के ऊपर विश्वास, विचार के ऊपर विचार आते और धर्म को आगे बढ़ाते रहे हैं। एक-एक ईंट रखकर जिस प्रकार मन्दिर बनाया जाता है, उसी प्रकार मानवता की भी क्रम-क्रम से रचना होती रही है। भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि का, गुणों का और विचार का वरदान दिया।

मानवता अज्ञात समय तक जीती है और सदा ही अध्ययन करती रहती है। इसलिए दोषहीन मनुष्य कभी हो ही नहीं सकता और न विशेषाधिकार से युक्त व्यक्ति या कोई वर्ग हो सकता है। ईश्वर और मनुष्य के बीच में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं। केवल मानवता ही दोनों के बीच में मध्यस्थ हो सकती है और है। मानवता ही मनुष्य के सामने युगसंचित शिक्षा रखकर उसे आगे बढ़ा सकती है।

व्यक्ति, एक स्वतन्त्र और जिम्मेदार जीव यदि चाहे तो इस जीवन का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग कर सकता है। यदि वह अपने कर्तव्य का पालन करे, तो वह सदुपयोग करता है और यदि वह अपने कर्तव्य का पालन न करे तो दुरुपयोग। मनुष्य को अहंकार से ग्रसित नहीं होना चाहिए। ईश्वरीय विधान को मनुष्य की शक्ति कभीं नहीं बदल सकती। मानवता की शिक्षा अवश्य संपूर्ण होनी चाहिए। हम देखते हैं कि मनुष्य आरम्भिक जीवन से किस तरह सभ्यता के जीवन तक पहुँच चुका है। अब उसे विश्व-मानवता की सभ्यता तक पहुँचना है।

धरती पर प्रगति का सिद्धान्त कार्य कर रहा है। मानवता को भी उसी के सिद्धान्त पर आगे बढ़ना है। व्यक्ति और मानवता दोनों को प्रगति करनी है। पाप, अहंकार और अत्याचार समाप्त होकर ही रहेंगे। यह संसार पाप करने के लिए नहीं है, यह सत्य और न्याय के आदर्श को पूर्ण करने का स्थान है। हम अपने मानव भाईयों के लिए जो कुछ करेंगे, उसी पर मानवता का भविष्य आश्रित होगा; मानव की अच्छाई पर ही मानवता की अच्छाई स्थापित होगी।

स्वाधीनता के प्रति

आप जीवित हैं। आपमें जो जीवन है, वह किसी दैवयोग से नहीं है। दैवयोग शब्द तो अस्पष्ट-सा है, जो लोगों ने अपने अज्ञान को छिपाने के लिए खोज निकाला है। जीवन तो आपको ईश्वर से प्राप्त हुआ है। अपने क्रमिक विकास द्वारा यह प्रकट करता है कि यह ईश्वर की एक विचारपूर्ण रचना है। इसलिए आपके जीवन का कुछ उद्देश्य है। पर मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है, यह अभी तक हमें मालूम नहीं पर उद्देश्य है अवश्य। क्या बच्चा इस बात का उद्देश्य जानता है कि उसे बढ़ते-बढ़ते परिवार से देश और देश से मानवता तक पहुँचना है ?

मानवता ईश्वर का शिशु है। ईश्वर जानता है कि मानवता को किस तरह विकसित होना है। मानवता ने अभी-अभी जाना है कि प्रगति उसके जीवन का नियम है। पर अभी तक उस प्रगति के पथ पर चलने की योग्यता उसमें नहीं आई। इसलिए अभी मानव में बर्बरता, गुलामी और शिक्षा की नितान्त कमी है। इसीलिए अभी तक मानवता इस विश्व कानून का अध्ययन करने में असमर्थ है; परन्तु इससे पूर्व कि हम अपने आपको समझें, हमारे लिए उस विश्व नियम को समझना आवश्यक है।

मनुष्य की बहुत ही छोटी संख्या अभी तक अपनी बौद्धिक शक्ति को इतना विकसित कर सकी है कि वह इस ज्ञान को पा सके। आपमें से बहुत से लोगों को उस शिक्षा को पाने का अवसर ही नहीं दिया गया, क्योंकि आपको अपने जीवन निर्वाह

के लिए आवश्यक शिक्षा के ही पचड़े में पड़े रहना पड़ा। आपमें से बहुत से लोग शारीरिक श्रम करके गुजारा करने को मजबूर होंगे; इसीलिए उस शिक्षा की चोटी पर पहुँचने में असमर्थ रहे हैं। अतः जब अभी तक केवल कुछ-एक लोग ही प्रगति शब्द को सुन पाए हैं और उनमें से भी इसके अर्थ को समझने वालों की संख्या बहुत कम है, तब हम उस प्रगति या सामूहिक मानव उद्देश्य को प्राप्त करने की आशा कैसे कर सकते हैं? तो क्या हम इस सत्य की खोज के मार्ग को छोड़ दें?—नहीं, हमें उसकी तह तक पहुँचना है।

सत्य की खोज के लिए नम्रता, आत्मसंयम और स्थिरता की नितान्त आवश्यकता है। जितने लोग अधीरता और अहं-कार के कारण इस पथ से भ्रष्ट हुए हैं, उतने दुष्टता के कारण नहीं। हम अपने लक्ष्य को एकाग्रता तथा अभ्यास के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। इस ज्ञान का भी धीरे-धीरे ही विकास हो सकता है।

हमारी योग्यता जो हमें ईश्वर से मिली हैं, हमारे श्रम का साधन है इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी योग्यता की निरन्तर उन्नति करते रहें और उसका अभ्यास अबाध गति से चलता रहे; परन्तु स्वाधीनता के बिना आप अपने कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते, इसलिए स्वतन्त्रता आपका अधिकार है, और यह आपका कर्तव्य है कि जिस भी साधन से हो सके स्व-तन्त्रता प्राप्त करें।

स्वतन्त्रता के बिना सदाचार नहीं रह सकता; क्योंकि यदि अच्छे और बुरे में से चुनने की आपको स्वतन्त्रता नहीं है, सामू-हिक प्रगति और अहंकार में से चुनाव करने की आपको खुली छूट नहीं है, तो आपमें उत्तरदायित्व या ज़िम्मेदारी कैसे आ सकती है? बिना स्वतन्त्रता के कोई वास्तविक समाज नहीं हो

सकता, क्योंकि स्वाधीन मनुष्यों और गुलामों के मध्य एक समाज की रचना कभी नहीं हो सकती ।

स्वतन्त्रता एक अत्यन्त पवित्र वस्तु है, क्योंकि व्यक्ति का जीवन—स्वतन्त्रता जिसकी प्रतिनिधि है—पवित्र है । जहाँ स्वतन्त्रता नहीं है, वहाँ जीवन केवल एक विचारशून्य क्रिया मात्र है । जो मनुष्य अपने स्वाधीनता के अधिकार को दबाये जाने देता है, वह अपनी प्रकृति के प्रति झूठा और मिथ्या चरित्र वाला है । यही नहीं, वह ईश्वरीय नियमों का भी विद्रोही है ।

जहाँ कोई परिवार, कोई वर्ग या कोई एक व्यक्ति अपने अधिकार को ईश्वर का बनाया बताकर दूसरों के ऊपर शासन करता है और उन्हें अपने अधीन रखता है, चाहे वह विशेष अधिकार जन्म या धन के कारण हो, वह ग़लत है ।

स्वतन्त्रता सबके लिए होनी चाहिए । परमात्मा किसी एक व्यक्ति को कभी भी प्रभु या मालिक बनाकर नहीं भेजता । परमात्मा ने, किसी मात्रा में प्रभुसत्ता अगर सौंपी है, तो वह संपूर्ण मानवता के हाथों में सौंपी है, किसी एक व्यक्ति के हाथों में नहीं । इसीलिए सत्ता मानवता को, राष्ट्र को अथवा समाज को मिली है । जब कोई राष्ट्र या समाज उस शक्ति को मानव की सामूहिक भलाई के लिए प्रयोग करना बन्द कर देता है तो उसकी यह शक्ति भी समाप्त हो जाती है; क्योंकि ईश्वर ने यह शक्ति योजना की पूर्णता के लिए प्रदान की है ।

अतः किसी एक व्यक्ति में प्रभुसत्ता निहित नहीं है । प्रभु-सत्ता तो लक्ष्य में है या उन कार्यों में है, जो उस लक्ष्य की पूर्ति करते हैं । हमारा कर्तव्य है कि हम अपने कामों और अपने लक्ष्य को सबके सामने विचारार्थ एवं निर्णयार्थ प्रस्तुत करें । किसी को भी मनमानी करने का अधिकार नहीं; क्योंकि किसी में भी प्रभुसत्ता स्थायी नहीं । किसी भी एक व्यक्ति को सबका शासक

नहीं बनाया जा सकता।

वह संस्था, जिसे हम सरकार कहते हैं, वह केवल एक दिशा-निर्देश है, कि शासन इस पद्धति से चलेगा। सरकार का अर्थ है कुछ एक लोगों के हाथों में सौंपा गया एक 'मिशन', जिससे राष्ट्र का काम अधिक तेज़ी से हो सके। यदि सरकार में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने मिशन के प्रति सच्चे नही हैं, तो उनके हाथों से निर्देशन की शक्ति अवश्य ही छिन जानी चाहिए। प्रत्येक वह व्यक्ति, जिसे किसी भी रूप में सरकार चलाने के लिए बुलाया जाता है, समझा जाता है कि जनता की सामूहिक इच्छा की पूर्ति करेगा। इसलिए वह व्यक्ति अवश्य ही चुना हुआ होना चाहिए, और जनता की इच्छा को न समझने पर या उसके विपरीत कार्य करने पर उसे वापस बुलाने का भी अधिकार चुनाव करने वालों को होना चाहिए।

किसी भी देश में किसी वर्ग, श्रेणी, समूह, वंश या व्यक्ति को कभी भी यह कह देना अनुचित है कि यह शासन अधिकार का सर्वेसर्वा बन जाय। अगर कोई ऐसा करता है, तो वह स्वतंत्रता को भंग करता है। जब तक ऐसे आदमी मौजूद हैं, जो आपकी इच्छा के बिना आपको हुक्म देते हैं और आप उस उस हुक्म को बजा लाने के लिए बाध्य हैं तब तक आप अपने आपको स्वतंत्र करने की हिम्मत नहीं कर सकते।

प्रजातन्त्र या गणतन्त्र ही वास्तव में न्यायानुकूल राज्य होता है। यही तर्क संगत भी है। आप किसी के दास नहीं हैं। आप का स्वामी परलोक में केवल परमेश्वर है और इहलोक में जनता है। जब ईश्वरीय नियम का प्रकाश मार्ग मिले, तब आप उस पर चलने का प्रयत्न अवश्य करें। जब जनता का सामूहिक रूप किसी विश्वास को धारण करने की घोषणा करे, तो आप उसके सामने अपना सिर अवश्य झुकाएें। उसके विरुद्ध विद्रोह

करने से सदा दूर रहें ।

परन्तु कुछ ऐसी वस्तुएें भी हैं, जो आपके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखती हैं और मनुष्य जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं । व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाली उन बातों पर तो जनता का भी कोई अधिकार नहीं है । कोई भी बहुसंख्या, कितनी भी जनता की सामूहिक शक्ति, आपसे उन वस्तुओं को छीनने का अधिकार नहीं रखती, जिन्हें पाकर आप मनुष्य बने हैं ।

जनता की बहुसंख्या अपने ऊपर अत्याचार करने का अधिकार किसी को नहीं दे सकती और न ही, अपनी स्वतन्त्रता को दूसरों के हाथों में सौंप देने का अधिकार ही रखती है । जो लोग इस प्रकार की आत्महत्या करने के लिए तत्पर हों, आप उनके विरुद्ध शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते ; परन्तु उनके इस निश्चय के विरुद्ध आपका सदैव अमिट और निरन्तर अधिकार है । आपको स्वतंत्रता अवश्य चाहिए । जीवन के भौतिक पोषण और सदाचार के पालन के लिये जो कुछ भी वांछनीय है, उस पर आपको अवश्य ही अधिकार पाना चाहिए ।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता, यातायात की स्वतंत्रता, धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता, मत की स्वतन्त्रता, समाचार पत्रों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता या अन्य किसी शान्तिमय उपाय से विचार प्रकाशन की स्वतन्त्रता, सभा सोसाइटी बनाने की स्वतन्त्रता, हाथों तथा मस्तिष्क के बल पर वस्तुओं को निर्माण करने की स्वतन्त्रता,—ये ऐसी बातें हैं, जिनका अधिकार आपसे छीनने का किसी को अधिकार नहीं है । सिवाय युद्ध आदि कुछ एक विशेष अवसरों के, किसी को भी यह अधिकार नहीं कि वह आपकी इस प्रकार की स्वतन्त्रता छीन ले । यदि कोई छीनता है तो अन्याय करता है और उस का विरोध करना आपका निश्चित कर्तव्य है ।

समाज के नाम पर किसी को यह अधिकार नहीं कि वह आपको कैद करे या आपके व्यक्तित्व को अपने आधीन करे। यदि कोई आपके विरुद्ध कोई बात देखता है तो उसका कर्तव्य है कि वह आपको न्यायाधीश के सामने ले जाये। यह किसी को अधिकार नहीं कि पासपोर्ट आदि की पाबन्दियाँ लगाकर आपको देश के एक भाग से दूसरे भाग में जाने से रोके, आपके धार्मिक अधिकारों के विरुद्ध कानून बनाने का भी किसी को अधिकार नहीं। किसी को भी यह अधिकार नहीं कि आपके और परमात्मा के बीच मध्यस्थ का काम करे।

परमात्मा ने आपको विचार दिया है, उसको प्रकट करने से रोकने का किसी को अधिकार नहीं। क्योंकि विचार प्रकट करना ही एकमात्र उपाय है, जिससे आपका अपने मानव भाइयों से संगम होता है। आपकी आत्मा से आपकी आत्मा का मेल विचार प्रकाशन द्वारा ही तो होता है और आपकी प्रगति का यही उपाय भी है। अतः बुद्धि के अधिकारों का उल्लंघन करने का किसी को भी अधिकार नहीं।

बुद्धि को रोकने का कोई भी कानून 'अत्याचार' है। हाँ, समाज को यह अधिकार है कि नियम भंग करने वाले लेखकों को जो अपराध को बढ़ावा दें या अन्य किसी प्रकार से समाज विरोधी कार्रवाई करें, दंड दे। कानून द्वारा स्थापित न्याय द्वारा दिये गये दंड को सहन करना मनुष्य का कर्तव्य है। लेकिन किसी भी कानून स्थापित सत्ता द्वारा संदेह में मनुष्य की गतिविधि को रोक देना अनुचित है। शान्तिमय सभा करना पवित्र कार्य है। उतना ही पवित्र, जितना कि विचार करना। परमेश्वर ने आपको ऐसा जीव बनाया है कि आपकी उन्नति मिल जुलकर ही हो सकती है। आप एक प्रतिज्ञा करें कि आप भविष्य में होने वाली विश्व-मानवता की उन्नति के लिए मिल-जुलकर यत्न करेंगे।

आपका कर्तव्य है कि जीवन को इस तरह प्रयोग करें कि वह सुरक्षित रहे, विकसित हो और फूले-फले । इसलिए आपमें से हरएक को श्रम करके उस ऋण से उऋण होना है। श्रम पर ही आपका जीवन निर्भर है । इसलिए श्रम को पवित्र मानिये इस बात का किसी को भी अधिकार नहीं कि इस तरह के कानून बनाये कि आपसे श्रम करने का अवसर छीन ले । अपनी इच्छानुसार अपने श्रम से पदार्थों को बनाने का आपका अधिकार है, आपका देश आपका बाज़ार है, जहाँ कहीं भी आप चाहें वहाँ अपने निर्माण को बेचने का आपको पूरा अधिकार है । जब सब प्रकार की स्वतन्त्रताओं को आप स्थापित कर चुकें, जब मतदान द्वारा स्थापित शासन चलने लगे, तब आपका एक कर्तव्य यह है कि व्यक्ति की सब तरह की योग्यताओं का विकास हो और इससे भी बढ़कर आपका चरित्र तथा आपके अन्य भाइयों का चरित्र पूर्णता को प्राप्त हो । पूर्णता का अर्थ है, विशाल मानवता की एकता तक पहुँचना, जहाँ सारे विश्व की मानवता के जीवन के कानून को आप जान जाऐंगे ।

आपका कर्तव्य है—सारे संसार के मनुष्यों का एक परिवार बनाना और एक ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना करना । ईश्वर के इस आदेश को आप निरन्तर परिश्रम द्वारा मानवता के अन्दर चरितार्थ कर सकते हैं । जब आप एक दूसरे से प्यार करते हैं, एक दूसरे से समान वर्ताव करते हैं, दूसरों के जीवन को अपने जीवन के समान मानते हैं, सबके हित में अपना हित समझते हैं और जब सारे मनुष्य परिवार के हित के लिए अपना सब कुछ यहाँ तक कि जीवन भी निछावर करने को तैयार हो जाते है, तब मानवता की प्रगति में बाधक दिखाई देने वाली बुराइयाँ अपने आप मिट जाती हैं । थोड़ा-थोड़ा करके, परमेश्वर की करुणा ही आपको विश्वमानवता के लक्ष्य तक ले जाएगी ।

तब बिखरे हुए मानवता के विभिन्न अंश एक हो जाएँगे, तब सारी मानवता एक समाज के रूप में संगठित हो जाएगी क्योंकि वास्तव में मानवता एक है। इन ऊँचे विचारों को सन्तों और महात्माओं तक ही सीमित मत रहने दीजिये। हर मनुष्य की आत्मा महान् है, इसलिए ये विश्वास सबको ही अपनाने चाहिएँ। स्वतंत्रता केवल एक साधन है, इसे उद्देश्य मत समझिये।

आपके अनेकों कर्तव्य हैं और अनेकों अधिकार हैं। आप न तो कर्तव्य और न ही अपने अधिकार किसी को दें। परन्तु यदि कभी व्यक्तिगत सम्मान के कारण आपका जीवन व्यक्तिगत अहंकार के चक्र में फँस गया तो समझिये कि आपका जीवन नष्ट हो गया। आपकी स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि आप किसी भी शासन को न मानें। आपकी स्वतन्त्रता तो केवल सामूहिक हित के विरुद्ध बंधन से इनकार है। सम्पूर्ण राष्ट्र के हित करने वाले शासन और कानून को मानना आपका कर्तव्य है। आपकी तथा आपके सभी भाइयों की सलाह के बिना जो सत्ता आपको अपने अनुशासन में बाँधने का प्रयत्न करती है, उसे मत मानिये।

स्वतन्त्रता का अर्थ निकृष्ट व्यक्तिवाद (Individualism) हर्गिज़ नहीं है। "अहंकार ही सब कुछ है, और व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति ही जीवन है" यह नाशकारी विचार कभी भी आप पर अपना अधिकार न जमाने पाये।

कुछ लोगों का कहना है कि "सब सरकारें, शासन सत्ताएँ निश्चत रूप में बुराइयाँ ही हैं। स्वतंत्रता की कोई सीमा नहीं। इसका जहाँ तक विकास कर सकें, कीजिये। किसी भी समाज का एकमात्र कार्य है, व्यक्ति को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करना। मनुष्य को अधिकार है कि वह स्वतन्त्रता का सत्प्रयोग अथया दुरुपयोग करे, पर उसके कार्यों का दूसरों पर

बुरा प्रभाव न पड़े। सरकार का इतना ही कार्य है कि वह एक व्यक्ति को दूसरे पर चोट करने से रोके, इससे अधिक वह किसी की स्वतन्त्रता के मार्ग में आड़े आने की अधिकारी नहीं।"

परन्तु ये भी मिथ्या सिद्धान्त हैं। किसी देश को महान् बनने से रोकने वाले ऐसे ही लोग होते हैं। पहले प्रकार के लोग अहंकारियों की श्रेणी पैदा कर देते हैं और दूसरे प्रकार के लोग समाज को पीछे धकेलते हैं। आपके जीवन में एक सामूहिक उद्देश्य भी है। उसे भुलाने पर स्वतंत्रता अराजकता (Anarchy) में बदल जाती है। जो स्वतन्त्रता के नाम पर मनमानी करने की इच्छा करता है, वह राज्य की शक्ति को खोखला करके, समाज को तहस-नहस करने का प्रयत्न करता है, वह सामूहिक चारित्रिक उत्थान को नष्ट करता है, वह समाज की प्रगति को रोक देता है।

अतः आप स्वतन्त्रता का अर्थ मनमानी समझते हैं, तो इसे तुरन्त गँवा बैठेंगे। आपकी स्वतन्त्रता तब तक ही पवित्र है, जब तक कि वह कर्तव्य की भावना से अनुशासित है, जब तक वह विश्वास पर आधारित है, जब तक वह मानवता की सामूहिक उन्नति को सामने रख कर चलती है। आपकी ऐसी स्वतन्त्रता फूले-फलेगी, उसकी रक्षा ईश्वर करेगा, उसकी रक्षा मनुष्य करेंगे, पर शर्त यही है कि आप स्वतन्त्रता को 'मनमानी' न समझें। स्वतन्त्रता का अर्थ है, आपको यह अधिकार कि आप अपनी योग्यता को अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग करके, अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार अपनी उन्नति करते हुए, अपने समाज की उन्नति के द्वारा विश्व मानवता की प्रगति में सहायक बनें।

शिक्षा के प्रति

भगवान ने आपको शिक्षा पाने के योग्य बनाया है। इसलिए अपने आपको शिक्षित बनाना आपका कर्तव्य और अधिकार है। इस काम में समाज को बाधक नहीं होना चाहिए बल्कि आपका अधिक से अधिक सहायक बनना समाज का कर्त्तव्य है। आपके लिए शिक्षा के उन साधनों को प्रस्तुत करना, जो आपके पास नहीं हैं, समाज का कर्तव्य है।

आपकी स्वतन्त्रता, सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा पाने का आपका अधिकार वहीं तक पूरा हो सकता है, जहाँ तक आपने शिक्षा प्राप्त की हो। शिक्षा के बिना आप अच्छाई और बुराई में भेद नहीं कर सकते, अधिकारों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, राजनीतिक अधिकारों के पाने में समर्थ नहीं हो सकते, जीवन भर के कार्य का उद्देश्य स्पष्ट नहीं कर सकते।

शिक्षा आपकी आत्मा का भोजन है। शिक्षा के बिना आप की योग्यताएँ सुप्त तथा निष्क्रिय रहती हैं। यदि एक बीज बिना हल चले खेत में डाल दिया जाय और उसे पानी न मिले तो जो दशा उसकी होती है, वही शिक्षा अथवा विद्या से रहित मनुष्य की होती है।

आजकल आपको कुछ भी शिक्षा नहीं दी जाती। जो दी जाती है। वह भी न अच्छी है और न काफ़ी है। आपको जो शिक्षा देते हैं या जिनके जिम्मे आपकी शिक्षा का प्रबन्ध है, उनके सामने उनका मार्गदर्शन करने का कोई सिद्धान्त

नहीं। वे अपने कार्य की कृतकृत्यता इसी में समझते हैं कि उन्होंने कुछ स्कूल खोल दिये, बस उनके कर्तव्य की इतने से ही इतिश्री हो गई। उनमें चाहे कितनी ही विषमता हो, पर उनमें आपके बच्चे आरम्भिक शिक्षा पाते हैं, कुछ हिसाब भी पढ़ते है। यह प्रारम्भिक शिक्षा का अंग अवश्य है ; पर इसी में शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती। जैसे हमारे अंग हमारा शरीर नहीं, हमारा शरीर तो विशाल है, उसी प्रकार शिक्षा भी विशाल है। वह प्रारंभिक पढ़ाई या गणित में ही समाप्त नहीं है। इस प्रकार की पढ़ाई से बड़े से बड़ा सन्त या बड़े से बड़ा दुराचारी भी पैदा हो सकता है। इसलिए इसी में सारी शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती।

शिक्षा के द्वारा बुद्धि की वृद्धि होती है और विद्या के द्वारा चरित्र सम्बन्धी योग्यताओं की वृद्धि होती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान होता है और विद्या द्वारा उस में उन कर्तव्यों को पूर्ण करने की शक्ति और योग्यता आती है। शिक्षा के बिना विद्या क्रियाशील नहीं हो सकती ; पर विद्या के बिना शिक्षा बेजान होगी।

चाहे आप कितनी ही शिक्षा पाते आएं ; परन्तु जब तक आप विद्या न पढ़ेंगे, आप जान न पाएँगे कि कौन-सी पुस्तक त्रुटियों से भरी हुई है और कौन-सी सत्य से परिपूर्ण है। शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आप अपने विचार अपने भाइयों को लिखकर उन पर प्रकट कर सकते हैं ; परन्तु यदि आपके विचार केवल अहंकार से भरे हुए हैं, तो उनका क्या लाभ है ? पर विद्या से अहंकार दूर होता है।

जिस प्रकार एक धनी आदमी के पास भरपूर धन है, वह चाहे तो उसका सही इस्तेमाल करे और चाहे ग़लत ; ठीक इसी प्रकार जिस शिक्षित के पास शिक्षा का भण्डार है, वह चाहे तो उसका सदुपयोग करे और चाहे तो दुरुपयोग करे ; परन्तु

विद्या शिक्षित को ठीक रास्ते पर चलाती है, उसके द्वारा शिक्षा का अच्छी प्रकार से उपयोग होता है। विद्या ही शिक्षा को सामान्य प्रगति का साधन बनाकर सभ्यता और स्वतन्त्रता की स्थापना करती है। जब कोई व्यक्ति शिक्षा को केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयुक्त करता है, तब यह अत्याचार का रूप धारण कर लेती है, भ्रष्टाचार का साधन बन जाती है।

शिक्षा जब सदाचार बढ़ाने वाली विद्या से रहित हो जाती है, तब यह एक भारी बुराई बन बैठती है, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में विषमता फैलाती है, समाज को ऊँच-नीच के वर्गों में बाँटकर समाज को दुर्बल कर देती है, मन को स्वार्थी, घमंडी, न्याय और अन्याय में सौदेबाजी करने वाला बना देती है। पढ़ाने वाले और विद्यादान देने वाले में बहुत अन्तर है। एक केवल विषय को समझाकर ही रह जाता है, दूसरा उसका जीवन में प्रयोग बतलाता है।

एकाधिकार के विरुद्ध दो विचारधाराओं के पृथक-पृथक पन्थ हैं। एक विश्वास करते हैं कि सम्पूर्ण शासनसत्ता एक व्यक्ति में निहित होती है और दूसरे पन्थ वालों का कहना है कि शासन की सारी सत्ता समाज के हाथों में होनी उचित है। समाज की बहुसंख्या की जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार शासन के नियम बनें।

इनमें से पहले मत वाला समझता है कि उसने ही मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार पर बल देकर स्वतन्त्रता को महत्व दिया है जबकि दूसरा समझता है कि उसने मनुष्य के सामूहिक बल के महत्व पर जोर देकर, मनुष्य के सामाजिक कर्तव्यों पर बल देकर सामूहिकता, सहकारिता और संगठन पर बल दिया है।

इनमें से पहला व्यक्ति शिक्षा से परे नहीं देखता और दूसरा केवल विद्या को देखता है; जबकि दोनों के सामंजस्य से ही

ठीक काम बन सकता है। आपको शिक्षा की भी आवश्यकता है और विद्या की भी। शिक्षा से आप अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं को बढ़ाएंगे और विद्या द्वारा आप उनका सही प्रयोग जानेंगे।

केवल शिक्षा अथवा केवल विद्या पर बल देना अतिवाद (Extremism) है। सत्य है, सम्पूर्ण प्रभुसत्ता परमात्मा में निहित है। उसके बाद आचार नियमों का अनुशासन ही मुख्य है, जिसके शासन में मनुष्य को चलना चाहिए। यही दैवी विधान है, जो संसार की मानवता पर शासन करता है। यह दैवी विधान विशेष बुद्धि वाले सद्गुणी लोगों के चरित्र में अपने आपको प्रकट करता है। लोग उसी का अनुकरण करके उन नियमों और सद्गुणों को अपना लेते हैं। मानवता भी युगधर्म के अनुसार उन गुणों को प्रकाशित करके मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करती है। मानवता बताती है कि किसी युग विशेष का क्या उद्देश्य है और उस युग में मानव का लक्ष्य क्या है।

जब कोई एक ही व्यक्ति डिक्टेटर बन कर समाज को अपने पीछे चलाने का ठेका ले लेता है, तब या तो वह अपने युग के मानवता के उद्देश्यों का सर्वोत्तम व्याख्याता होता है या फिर अत्याचारी, सर्वग्रासी और दूसरों के अधिकारों का शोषक होता है।

केवल बहुसंख्यक मत अथवा वोट से ही सर्वोच्च सत्ता का अधिकार नहीं मिल जाता। यदि बहुसंख्यक वोटें सर्वोच्च सदाचार नियमों के विरुद्ध दी गई हैं, तो वे जानबूझकर भविष्य की प्रगति का दरवाज़ा बन्द कर देती हैं। समाज की भलाई, स्वतन्त्रता व प्रगति—इन तीनों में से किसी एक के भी विरुद्ध जो प्रभुसत्ता हो, उसे कभी स्वीकार मत कीजिये।

शिक्षा का काम है यह बतलाना कि किन कामों से समाज का कल्याण होगा। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के सामने समाज का

कल्याण करने के अनेक मार्ग खुल जाते हैं। रहा सन्तान को पढ़ाने का सवाल। आपके लिए यह सबसे प्रथम महत्त्व की बात है कि आप अपनी सन्तान को उन सिद्धान्तों और विश्वासों की पूरी शिक्षा दें, जो आपके समय तथा देश के अनुकूल हैं। अपने देश का चारित्रिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यक्रम उन्हें समझायें। उन्हें बताइये कि विधान-सभाओं द्वारा पास किये जा रहे विधानों का क्या महत्त्व है। अपनी सन्तान को स्पष्ट बताइये कि मानवता अब तक किस यात्रा तक प्रगति कर पाई है तथा कहाँ तक पहुँचने का उसका लक्ष्य है? आपके लिए यह आवश्यक है कि आप अपनी सन्तान को स्वयं अनुभव करने के योग्य बना दें ताकि वे समता व सामान्य लक्ष्य के लिए एकता के प्रति भ्रातृभाव तथा ईश्वर के प्रति भक्ति से युक्त बनें। इस प्रकार की शिक्षा देना वास्तव में राष्ट्र का कर्तव्य है। देश की वैधानिक सरकार अपने नागरिकों की सन्तति को भविष्य के लिए तैयार करने की ज़िम्मेदारी रखती है; परन्तु बालकों के माता-पिता ही उसमें विशेष सहायक बनते हैं।

आज की चारित्रिक शिक्षा केवल अराजकता ही है। जहाँ लोग गरीब हैं, वहाँ तो उन्हें समय ही नहीं मिल पाता कि वे अपनी सन्तानों को आचार की शिक्षा दे पाएँ और जहाँ लोग धनी हैं, वे आचार सम्बन्धी शिक्षा में विश्वास ही नहीं रखते। धनी लोग भौतिकवादी या पदार्थवादी (Materialistic) विचारों से घिरे हुए होते हैं।

मनुष्य का स्वाधीनता की ओर रुझान होगा या कायरता-पूर्ण पलायन की ओर, अमीरी चोंचलेबाजी की ओर झुकाव होगा या उसके विरुद्ध, इसमें माता-पिता से प्राप्त शिक्षा का बड़ा स्थान होता है। छोटी अवस्था में ही बालक की प्रवृत्तियाँ निश्चित हो जाती हैं। जब वे बड़े हो जाते हैं, तब वे किसी नए

प्रभाव को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते है। समाज उन्हें एक सामान्य विचार को आगे बढ़ाने के लिए उनका आह्वान करता है। परन्तु उनकी यदि मानसिक तैयारी नहीं होती तो वे कैसे काम कर सकते हैं ? तब समाज उन्हें दंड देता है। परन्तु जब समाज ने उन्हें शिक्षित नहीं किया तब समाज उनसे अपेक्षा कैसे कर सकता है कि वे उसकी माँग के अनुसार काम करेंगे ? समाज उनसे सहकारिता और बलिदान की माँग करता है; परन्तु किसी भी शिक्षक ने जब उन्हें जीवन के आरंभिक काल में ऐसी शिक्षा ही नहीं दी, तब वे समाज की आवश्यकता के अनुरूप कैसे सिद्ध हो सकते हैं ?

व्यक्तिवादी लोग सारे समाज में समान शिक्षा देने के पक्ष में नहीं हैं। वे समान बाटों और समान पैमानों में तो विश्वास रखते हें; परन्तु समान सामाजिक लक्ष्य में विश्वास नहीं रखते। पर ध्यान रहे, समान सामाजिक लक्ष्य ही वह धुरी है, जिस पर सारे राष्ट्र की एकता का चक्र घूमा करता है। आधुनिक वैधानिक सरकार की सफलता इस एक राष्ट्रीय लक्ष्य पर ही आश्रित रहती है। राष्ट्रीय शिक्षा के बिना, किसी भी राष्ट्र की आचार सम्बन्धी सत्ता कायम नहीं हो सकती; क्योंकि राष्ट्रीय शिक्षा से ही राष्ट्रीय आत्मा का विकास होता है।

सभी नागरिकों के लिए एक समान राष्ट्रीय शिक्षण के बिना 'कर्तव्यों की समानता' और 'अधिकारों की समानता' का कोई भी अर्थ नहीं रह जाता। कर्तव्यों का ज्ञान और अधिकारों को प्राप्त करके, उन्हें प्रयुक्त करना भाग्य पर नहीं छोड़ा जा सकता। इनकी शिक्षा देकर ही हम योग्य नागरिक प्राप्त कर सकते हैं।

जो लोग समान शिक्षा का विरोध करते हैं, वे स्वतन्त्रता का विरोध करते हैं। वे झंडा तो स्वतत्रन्ता का उठाते हैं; पर

स्वतन्त्रता किसकी ? माता-पिताओं की या सन्तानों की ? यदि वे सन्तानों की स्वतन्त्रता की बात करें तो उन्हें कहना चाहिए कि जब माता-पिता एकाधिकार से उन्हें जो चाहे पढ़ायेंगे, तो क्या उन सन्तानों की स्वतन्त्रता समाप्त न हो जायेगी ? उस समय तो प्रगति की स्वतन्त्रता असम्भव हो जाएगी; क्योंकि माता-पिता तो अपनी कुरीतियाँ और अपनी रूढ़ियाँ अपनी सन्तानों को सिखाएँगे। वे अपने व्यक्तिगत विश्वासों को उनके मस्तिष्क में ठूँसने का प्रयत्न करेंगे, चाहे वे प्रगति के विरोधी ही हों। ऐसी दशा में बच्चे न तो स्वतन्त्रता का ही अर्थ समझ पाएँगे और न प्रगति का।

पर इसे स्वतन्त्रता तो नहीं कहा जा सकता। समता के बिना सच्ची स्वतन्त्रता टिक नहीं सकती और जो समान आधार लेकर नहीं चलते, जिनकी शिक्षा समान सिद्धान्तों को लेकर नहीं होती, उनमें कभी भी समानता नहीं हो सकती। समता तो एक समान कर्तव्य की भावना द्वारा ही आती है। एक समान कर्तव्य की भावना नहीं तो स्वतन्त्रता कैसी ? यदि एक पिता अपने पुत्र को मारपीट करने की स्वतन्त्रता माँगेगा तो क्या समाज उसे देगा ? कभी नहीं। इसी प्रकार हरएक व्यक्ति को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह स्वतन्त्र रूप में जैसे चाहे अपनी सन्तान को शिक्षा दे।

जब शुरू में शिक्षा की स्वाधीनता का नारा लगाया गया था, तब इसका कुछ उपयोग था। आज भी यदि सरकार किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह की मनमानी को सारे लोगों पर थोपने की कोशिश करती है, तो 'शिक्षा में व्यक्ति की स्वतन्त्रता' कुछ अर्थ रखती है। परन्तु जब राष्ट्रीय सरकार जनता की स्वतन्त्र इच्छा के अनुकूल शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम बनाती है, जिससे समाज का सामूहिक साधन होना है; तब व्यक्ति को शिक्षा

सम्बन्धी स्वाधीनता देना—एक-एक आदमी को यह अधिकार देना कि वह जैसे चाहे देश के बच्चों को पढ़ाये—यह बात कभी देश के लिए लाभकारी नहीं हो सकती। अच्छे शिक्षक अपने शिष्यों को बिदा करते हुए कहेंगे—

"आपको सब के साथ मिल-जुलकर सहकारिता और संगठन से जीवन व्यतीत करना है। हमने आपको समाज के संगठित आधार के नियम पढ़ा दिये हैं। इन्हीं सिद्धान्तों में राष्ट्र विश्वास रखता है; परन्तु याद रखिये इन सिद्धान्तों में से मुख्य है—'प्रगति'। एक नागरिक के नाते आपका कर्तव्य है कि आप अपने मनुष्य भाइयों का हृदय तथा मस्तिष्क उन्नत करें। जहाँ कहीं आप जायें, परीक्षा करें, तुलना करें और यदि विश्वास से बढ़कर किसी सत्य की खोज कर पायें तो उसे खुलकर प्रकट करें। तब सारा राष्ट्र आपको आर्शीवाद देगा।"

इस प्रकार की एक निःशुल्क राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति जो कि सबके लिए अनिवार्य हो, राष्ट्र के लिए आवश्यक है। राष्ट्र का यह भी कर्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति तक अपने कार्यक्रम की घोषणा पहुँचाये। प्रत्येक नागरिक को उसकी आवश्यक चारित्रिक शिक्षा स्कूल में ही मिल जानी चाहिए। प्रत्येक छात्र को राष्ट्रों के इतिहास का विषय पढ़ाया जाना चाहिए। इसके साथ ही मानवता की प्रगति का भी सिंहावलोकन कराया जाना चाहिए और उसके अपने देश के इतिहास में उसे उन सिद्धान्तों की सरल व्याख्या समझाई जानी चाहिए, जिनके आधार पर उसके देश की विधान सभाएँ विधान बना रही हैं। इन्हीं स्कूलों में हरएक छात्र को समता तथा परस्पर प्रेम का भाव सीखना चाहिए।

इस प्रकार का कार्यक्रम यदि एक बार नागरिकों तक पहुँचा दिया गया, तो स्वतन्त्रता अपना अधिकार पा लेगी।

परिवार की शिक्षा ही नहीं, बल्कि हर प्रकार की शिक्षा पवित्र है। हर एक मनुष्य को अपने विचार दूसरों तक पहुँचाने का अधिकार होना चाहिए। हरएक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह उन विचारों को सुने। समाज का कार्य है संरक्षण देना, प्रोत्साहित करना, विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को हर प्रकार की सुविधा देना और देश के कार्यक्रमों को सबके सामने खुले रूप में रख देना, ताकि उनमें सुधार या रद्दो-बदल किया जा सके।

———

सभा-संगठन के प्रति

ईश्वर ने आपको सामाजिक तथा प्रगतिशील प्राणी बनाया है। अतः आपका यह कर्तव्य हो जाता है कि आप मिल-जुल कर काम करें, संगठित हों और अपने इर्द-गिर्द विद्यमान परिस्थितियों में जितनी संभव हो, प्रगति करें। यह आपका अधिकार है कि आप जिस समाज के अंग हैं, वह समाज आपके संगठन, सहकारिता तथा आपकी प्रगति में बाधक न बने; बल्कि समाज का यह काम है कि वह आपकी प्रगति में सहायक बने और आपके लिए सहकारिता तथा संगठन के उपाय जुटाये, ताकि आपकी अधिक-से-अधिक प्रगति व उन्नति हो सके।

स्वतन्त्रता से आपको इस बात की शक्ति प्राप्त होती है कि आप अच्छे और बुरे में से विवेक करके अच्छे कामों को चुन सकें। स्वतन्त्रता से आपको कर्तव्य पालन की शक्ति प्राप्त होती है और अहंकार से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है। शिक्षा द्वारा आप अच्छे और बुरे में से अच्छे को चुन सकते हैं; जबकि सभा द्वारा आपको चुने हुए कार्य को व्यवहार में लाने का अवसर प्राप्त होता है। 'प्रगति' ही वह लक्ष्य है, जिसे आपको सदा ध्यान में रखना है। जब आप प्रगति को अर्थात् अपने लक्ष्य को प्राप्त करलें तो सिद्ध हो जाता है कि आपका चुनाव ठीक था। पर जब इनमें से एक भी शर्त भुला दी जाती है, तब न तो मनुष्य वास्तव में मनुष्य ही बन सकता है और न नागरिक ही। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य को वास्तव में मनुष्य और नागरिक बनाने वाली तीन बातें हैं :—

१. स्वतन्त्रता
२. शिक्षा
३. सहकारिता

इन तीनों बातों के अभाव में मनुष्य की प्रगति रुक जाती है। इसलिए इन तीनों बातों के लिए आपको संघर्ष करने की आवश्यकता है। संगठन या सोसाइटी बनाने का आपका जन्म सिद्ध अधिकार है। उसके बिना स्वतन्त्रता और शिक्षा बेकार है। सभा-संगठन का अधिकार धर्म की तरह ही पवित्र अधिकार है। आप सब ईश्वर के पुत्र हैं, अतः आप परस्पर भाई-भाई हैं। क्या भाइयों को परस्पर मिलने और सभा बनाकर संगठित कार्य करने से रोकना अपराध नहीं है ?

आत्माओं का सम्मिलन एक अकाट्य तथ्य है, यह मानवता के एकीकरण की ओर बढ़ा हुआ एक पग है; इसलिए यह एक पवित्र कार्य है। यह मनुष्य को इस बात की शिक्षा देता है कि वे सब ईश्वर की दृष्टि में एक ही परिवार के समान सदस्य हैं। आत्माओं के सम्मिलन में न कोई स्वामी रहता है और न कोई नौकर, सब समान हो जाते हैं। सम्मिलन का अर्थ है—समानता, आत्माओं का भ्रातृभाव। अब यह काम मानवता के लिए बाकी रह गया है कि वह सम्मिलन का विस्तृत और व्यापक अर्थ प्रकाशित करे और उसे व्यवहार में लाये। धर्म इस कार्य को पूर्ण नहीं कर पाया। धर्म ने राजाओं, शासकों, ऊँची श्रेणियों, पोपों और पुजारियों का पल्ला पकड़े रखा; इसलिए वह सामान्य जनता में इस सम्मिलन को व्यापक न बना सका।

बाद में ऐसे पुरुष हुए, जिन्होंने सम्मिलन का अर्थ बताया—सम्मिलन—जनता का बिना किसी भेदभाव के सम्मिलन। जिन लोगों ने यह घोषणा की कि संसार में कोई ऊँची श्रेणी नहीं; मनुष्य-मनुष्य सब बराबर हैं और सत्य के लिए जिन्होंने अनेक

बलिदान दिये, उन लोगों के हम कृतज्ञ हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मनुष्य और भगवान् के बीच में किसी भी मध्यस्थ की, चाहे वह धार्मिक हो या राजनीतिक, आवश्यकता नहीं है। उन्होंने इस बात की स्थापना की कि जो कोई गुणों में अधिक हो, दैवी तथा मानवी ज्ञान में बढ़चढ़कर हो, वही सम्मतिदाता तथा पथ-प्रदर्शक बने। परन्तु राजनीतिक शक्ति पर एकाधिकार किसी का न हो, न ही किसी वर्ग या जाति की औरों पर किसी तरह की श्रेष्ठता हो और सम्मिलन का अधिकार सब को बराबर हो। परलोक के लिए जो कुछ पवित्र , वही इस लोक के लिए भी पवित्र है। मनुष्य से भगवान् के मिलन की तरह मनुष्यों का आपस में मिलकर सभा-संगठन बनाना और सहकारिता से कार्य करना भी पवित्र है। धार्मिक सम्मिलन से ही सभा-संगठन का गुण मनुष्यों में आया। इसलिए सभा-संगठन को आप अपना कर्तव्य और साथ ही अधिकार भी समझें।

जो लोग सभा-संगठन को सीमित कर देना चाहते हैं, वे कहेंगे कि सच्चा संगठन तो राज्य है, राष्ट्र है, आप इसके सदस्य हैं ही और होना भी चाहिए। इसलिए आपका अलग सभा-संगठन या तो राज्य का विरोधी है या बेकार है। लेकिन राज्य या राष्ट्र तो उस देश के सम्पूर्ण लोगों के सर्व-सामान्य उद्देश्यों का प्रतिनिधि है। ऐसे भी कुछ उद्देश्य हो सकते हैं, जो देश के सारे समाज से संबंध नहीं रखते, बल्कि राष्ट्रीय जनता की कुछ ही संख्या से वे संबंधित होते हैं।

एसोसिएशन या सभा-संगठन प्रगति की नींव है। राज्य कुछ स्थिर सिद्धान्तों का प्रतिनिधि होता है, जिसमें नागरिकों की संपूर्ण संख्या इसकी स्थापना के समय उन्हें एक मत होकर स्वीकार करती है। मान लीजिए किसी नये और सत्य सिद्धान्त, का विकास करना है, जो राज्य को जीवन प्रदान करने वाला

है और वह सत्य जनता के एक अंश पर ही प्रकट होता है, तब उसका प्रचार किसी स्वतन्त्र सभा-संगठन के बिना कैसे हो सकता है ? मान लीजिए किसी वैज्ञानिक खोज के परिणाम-स्वरूप जनता के एक अंश से दूसरे अंश में कोई नया संपर्क स्थापित होता है, तब जिन पर वह नया सत्य प्रकट होता है, वे उसे राज्य से कैसे स्वीकृत करा सकते हैं; जब तक कि उनका कोई सभा-संगठन न हो ? संभव है वह सत्य राज्य के लिए चिरस्थायी हित का हो, वे राज्य को कैसे उसे ग्रहण करने के लिए राज़ी कर सकते हैं ? इसलिए सभा-संगठन का अधिकार एक पवित्र अधिकार है। राज्य सुस्थापित सिद्धान्तों में एकाएक परिवर्तन न करने के लिए तैयार नहीं हुआ करता। उसको तैयार करने के लिए सभा-संगठन की नितान्त आवश्यकता होती है। अल्पसंख्या का सभा-संगठन भी प्रचार द्वारा दिनों-दिन बढ़ता जाता है और अन्त में राज्य को उनकी बात मानने के लिए झुकना ही पड़ता है।

सभा-संगठन भविष्य को बनाने के लिए आवश्यक साधन होता है। इसके बिना राज्य अपरिवर्तनशील हो जाता है, उसमें समय की आवश्यकता के अनुसार बदलने की शक्ति नहीं आ पाती। वह सभ्यता की उस सीमा तक ही रुक जाता है, जहाँ तक कि वह पहले पहुँच चुका है।

सभा-संगठन का उद्देश्य प्रगतिशील होना चाहिए। वह सत्य के विपरीत न हो। जिन सत्यों पर मानवता एक मत हो चुकी है, उनके विपरीत सभा-संगठन नहीं किया जाना चाहिए। वह राष्ट्र की स्वीकृत स्थापनाओं की जड़ उखेड़ने वाला भी न हो। यदि सभा-संगठन जनता के किसी दूसरे अंश की जायदाद को हड़पने के लिए बनाया जाय, यदि अपने सदस्यों के लिए बहु-विवाह अनिवार्य करदे, या राष्ट्र को ही विघटित और टुकड़े-

टुकड़े करने के लिए बनाया जाय या किसी की डिक्टेटरशिप आरम्भ करने के लिए बनाया जाय, तो वह ग़ैर कानूनी होगा। राष्ट्र को अधिकार है कि ऐसे सभा-संगठन के सदस्यों से वह साफ़ कह दे—

"हम उन विचारों का फैलाना कभी सहन नहीं कर सकके, जिनसे मनुष्य की प्रकृति का, उसके सदाचार का या राष्ट्र का विरोध होता है। यदि इस तरह के जन-विरोधी विचारों को फैलने वाली संस्था आपको बनानी है, तो इस राज्य को, इस राष्ट्र को छोड़कर चले जाएँ।"

सभा-संगठन अवश्य ही शान्तिमय होना चाहिये। जिस समय स्वतन्त्रता न हो, स्वराज्य स्थापित न हुआ हो, उस समय गुप्त संगठन बनाना कानूनी हथियार है, जिससे जनता लड़ती है, है, परन्तु जब स्वराज्य स्थापित हो चुका हो, जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी हो, तब गुप्त और हिंसात्मक संगठन बनाना राष्ट्र-विरोधी कार्य हो जाता है।

सभा-संगठन ऐसा होना चाहिए, जो प्रगति का रास्ता खोल दे। इसलिए वह प्रकट होना चाहिए, ताकि सारी जनता उसकी तथा उसके सिद्धान्तों की परीक्षा करके उसके बारे में अपना निर्णय दे सके। सभा-संगठन को अन्य जनों के स्वाभाविक व नैसर्गिग अधिकारों का अवश्य ही सम्मान करना चाहिए। जो सभा संगठन मज़दूरों की स्वतन्त्रता को छीनने के लिए बनाया गया हो या जो विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता को कुचलने के लिए बनाया गया हो, जनता का कर्तव्य है कि जल्दी से जल्दी ऐसे सभा-संगठन को भंग करदे। साथ ही राष्ट्र तथा सरकार का भी कर्तव्य है कि ऐसे संगठन को कभी न पनपने दे।

इस तरह की बुराइयों से दूर जो सभा-संगठन हो, उसकी स्थापना जनता का पवित्र अधिकार है, चाहे शुरु में ऐसे सभा-

संगठन करने वालों की संख्या कितनी भी कम क्यों न हो। जो सरकार इस प्रकार के पवित्र सभा-संगठन को रोकने का प्रयत्न करती है, वह अपने सामाजिक कर्तव्यों से गिर जाती है। तब जनता का कर्तव्य हो जाता है कि पहले तो ऐसी बाधक सरकार को चेतावनी दे और अगर सरकार फिर भी न माने और सभा संगठन में रोड़े अटकाये तो जनता को चाहिये कि ऐसी निकम्मी सरकार को बदल डाले।

ये हैं मुख्य आधार जिन पर आपके कर्तव्य आश्रित हैं। इन्हीं स्रोतों से आपके अधिकार पैदा होते हैं। आपके नागरिक जीवन में संभव है, असंख्य प्रश्न उठें; पर उनका यहाँ एकदम उत्तर नहीं दिया जा सकता; यहाँ तो केवल मूल सिद्धान्तों को ही दिया जा सकता है, जिनके प्रकाश में आप समय-समय पर उठने वाले प्रश्नों को हल कर सकते हैं। ये तो प्रकाश-स्तम्भ की तरह हैं।

परमात्मा मनुष्य-मनुष्य में समता का आधार है, वह एक है, सभी मनुष्य उसके पुत्र हैं; इसलिए आपस में सब समान हैं। इसलिये हरएक राज्य के कानून का आधार, प्रचार के नियम हैं। जनता के लिये जो लोग कानून बनाते हैं, उनके व्यवहार को राष्ट्र की जनता, प्रचार नियमों को कसौटी पर कसकर परखने का अधिकार रखती है; क्योंकि अन्त में प्रत्येक विधान और कानून की अन्तिम न्यायाधीश राष्ट्र की संपूर्ण जनता ही होती है। वही सारी राजनीतिक शक्ति का मूल आधार भी होती है।

प्रत्येक कानून का मूल आधार है, प्रगति। जो कानून जनता को प्रगति की ओर नहीं ले जाता, उसे कानून बनने देना जनता की कमजोरी होगी। प्रगति एक युग से दूसरे युग में निरन्तर होती रहनी चाहिए। प्रगति मानवता के हित के

लिए हर क्षेत्र में होनी चाहिए। सदाचार में, उद्योग-धन्धों में, कला-कौशल में और धन के उचित बँटवारे में भी।

आपके कर्तव्य मानवता के प्रति हैं, राष्ट्र के प्रति हैं, परिवार के प्रति हैं और आपके अपने आपके प्रति भी हैं। ये कर्तव्य मनुष्य प्राणी के स्वभावजन्य हैं और इनका उचित विकास करना आपका काम है। ये विशेष गुण प्रत्येक मनुष्य में विकसित होने चाहिएँ। स्वतन्त्रता, शिक्षा पाने की योग्यता, सामाजिक प्रवृत्तियाँ, सामर्थ्य और प्रगति की आवश्यकता या चाह।

इन आवश्यक गुणों से युक्त होकर ही मनुष्य वास्तव में मनुष्य या नागरिक बन पाता है। कर्तव्यों से ही अधिकार बनते हैं। इन्हीं से राज्य का स्वरूप बन पाता है। इन सिद्धान्तों को कभी मत भूलिए। सावधान रहिए कि इन सिद्धान्तों का कभी भी उल्लंघन न हो। अपने व्यक्तित्व में उन्हें मूर्त-रूप में प्रकट कीजिए, फिर आप स्वतन्त्र भी रहेंगे और उन्नति भी करेंगे।

इन कर्तव्यों को पूर्ण करने में एक ही सबसे बड़ी बाधा हो सकती है, वह है असमानता। बस यही एक बुराई है, जिसका आपको डटकर मुकाबला करना है और इसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकना है। क्योंकि जब तक साधनों की बराबरी नहीं है, समाज का एक समान विकास नहीं हो सकता।

कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिए और अधिकारों के प्रयोग के लिए तीन बातें नितान्त आवश्यक हैं—समय, बुद्धि का विकास और सामग्रियों या सांसारिक पदार्थों की विद्यमानता।

आज जनता की बहुसंख्या के पास प्रगति के ये तीनों साधन पर्याप्त परिमाण में नहीं हैं। आम लोगों का जीवन निरन्तर संघर्ष का जीवन है, फिर भी उन्हें जीवनोपयोगी पदार्थों के मिलने की गारन्टी नहीं है। उनके सामने प्रगति का प्रश्न नहीं है, उनके सामने एक ही सवाल है कि वे जियें कैसे ?

इससे साफ सिद्ध है कि समाज में एक बड़ा गहरा और भारी दोष विद्यमान है। इस बुराई की ओर अगर आप ध्यान न दें तो आप अपने कर्तव्य से गिरेंगे। समाज की इस दोषपूर्ण व्यवस्था को आपके सिवा कौन बदलेगा? समाज के इन दोषों को दूर करके साधनों का समान बँटवारा करना आपका ही काम है। आर्थिक समस्या का उचित समाधान किये बिना आप उन्नति कर सकेंगे या समाज प्रगति कर सकेगा, यह एक भ्रम ही है।

अर्थ-व्यवस्था के प्रति

आपमें से लोग बहुत से ग़रीब हैं। मज़दूरों, किसानों और कार्यकर्ताओं का तीन चौथाई भाग तो निरन्तर जीवन भर रोटी-रोज़ी के लिए संघर्ष ही करता रहता है। उन्हें अपने हाथों से रोज़ाना दस-बारह घण्टे अथवा इससे भी अधिक निरन्तर काम करना पड़ता है और कठोर परिश्रम करने, खून-पसीना एक करने पर भी वे केवल इतना ही कमा पाते हैं कि मुश्किल से पेट भर सकें। ऐसे लोगों के सामने प्रगति के कर्तव्यों का बखान करना, उनके सामने बुद्धि, आचार, जीवन, राजनीति की शिक्षा समाज आदि की बातें करना केवल एक व्यंग्य है। उन ग़रीबों के पास न तो प्रगति के लिए समय ही है और न साधन ही।

फटे हाल, थके हुए, काम से झल्लाये वे लोग मूक हैं, वे अपने स्वामी पूँजीपतियों के विरुद्ध अपने अधिकारों की बात को एक मूर्खता समझते हैं। वे ग़रीब अपने दुखों को भुलाना चाहते हैं, वे कल की रोटी की फ़िक्र को भी शराब पीकर भुलाने की कोशिश करते हैं। वे गंदी बस्तियों में दिन काटते हैं और दूसरे दिन फिर उसी अरुचिकर मेहनत मज़दूरी के लिए उठकर तैयार हो जाते हैं। यह एक ऐसी दर्दनाक हालत है, जिसे अवश्य ही बदलना चाहिए।

आप मनुष्य हैं, आपमें योग्यता है, शारीरिक बल ही नहीं बुद्धि और आचार सम्बन्धी शक्तियाँ भी हैं। आपका कर्तव्य है, अपनी इन शक्तियों का विकास करना। आपको नागरिक बन-

कर नागरिक अधिकारों को प्राप्त करना है। उन्हें प्राप्त करने के लिए आपको शिक्षा प्राप्त करने की और कुछ समय निकालने की आवश्यकता है। यह सच है कि आपको कुछ कम काम करना पड़े, कुछ अधिक आमदनी होने लगे, तभी आप नागरिकता के अधिकार पाने के लिए कुछ कर सकते हैं।

हम सब ईश्वर के पुत्र हैं। हम आपस में भाई-भाई हैं। हम सब एक ही विशाल परिवार के सदस्य हैं, जिस का नाम मानवता है, पर इस परिवार में असमानता है; क्योंकि हमारी रुचियाँ और योग्ताएँ भिन्न हैं; लेकिन एक सिद्धान्त अवश्य ही सबको स्वीकार करना पड़ेगा—"जो मनुष्य अपनी पूरी योग्यता के साथ इतना काम करेगा, जितना कि वह कर सकता है, उसे बदले में अवश्य ही उतना धन मिलना चाहिए, जितना उसके विकास तथा निर्वाह के लिए नितान्त आवश्यक है, जिससे वह अपनी विशेष योग्यताओं को बढ़ाता हुआ अपने आपमें पूर्ण मनुष्य बन सके।"

इस आदर्श तक मानवता को पहुँचना है। हर कोई परिवर्तन या क्रान्ति जो हमें इस आदर्श के निकट नहीं पहुँचाती, वह समाज को आगे नहीं बढ़ाती, वह राजनीतिक प्रगति नहीं करती, वह ग़रीबों के लिए जीवन सामग्री जुटाने में कुछ भी मदद नहीं करती, वह ईश्वर के विधान का उल्लंघन करती है। वह स्वार्थों की लड़ाई गैरकानूनी है, असत्य है और एक बुराई है। परन्तु इस आदर्श को हम पा कैसे सकते हैं ?

कुछ दब्बू लोगों ने इसका उपाय यह बताया है कि गरीबों को अपना आचार सुधारना चाहिए। उन्हें सेविंग्स बैंकों की स्थापना करके बचत करनी चाहिए। उन्हें अपनी मज़दूरी का कुछ भाग वहाँ जमा करा देना चाहिए। उन्हें बचत करनी चाहिए। उन्हें नशा-पानी छोड़ देना चाहिए। उन्हें आत्म-संयम

द्वारा इच्छाओं से छुटकारा पाना चाहिए।

ये बड़ी सुन्दर सम्मतियाँ हैं; क्योंकि ये ग़रीबों के चरित्रों का सुधार करना चाहती हैं। ठीक है, इसके बिना सारे सुधार निष्फल होंगे; परन्तु ये बातें ग़रीबी का प्रश्न तो हल नहीं करतीं, ये सामाजिक कर्तव्यों की ओर कुछ ध्यान दिलाती हैं।

आपमें से शायद ही कुछ लोग ऐसे हों, जो कुछ धन बचा पायें। जो कुछ बचा भी पायेंगे, वह उनके बुढ़ापे के गुज़ारे के लिए मुश्किल से काफ़ी होगा। आर्थिक सवाल इन छोटी-छोटी बातों से हल होने वाला नहीं। जीवन के पूर्ण विकास और मानवता की प्रगति के लिए हमें कोई आर्थिक कार्यक्रम भी बनाना चाहिए।

पदार्थ सम्बन्धी कल्याण के लिए प्रश्न यह है कि धन तथा निर्माण को कैसे बढ़ाया जाय ? इनके बारे में जो सुधारक विचार नहीं करते वे बहुत दूर तक नहीं जान पाते और उनके बताये हल समस्या को नहीं सुलझा सकते। समाज जिस जनता के श्रम के आधार पर जीवित है और जब कभी ख़तरा आता है, तो जिन लोगों से प्राणों का बलिदान माँगता है, उनका समाज पर एक पवित्र ऋण है, इसलिए उनकी समस्याओं को सुलझाना समाज का कर्तव्य है।

एक दूसरी तरह के विचारक हैं, जो यद्यपि जनता के शत्रु नहीं हैं, तथापि जनता की तरफ से उदासीन अवश्य हैं, वे जनता के दुख-दर्द और उसकी कराह को नहीं सुनते। ये अर्थशास्त्री (Economist) कहलाते हैं। वे उद्योग-धन्धों की स्वतन्त्रता के लिए अथक परिश्रम करते हैं और योग्यतापूर्वक संघर्ष करते हैं; परन्तु उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि प्रगति और सभा-संगठन इन दोनों बातों का अटूट सम्बन्ध है और इन्हें मनुष्य स्वभाव से अलग नहीं किया जा सकता। उनका

कहना है कि हरएक आदमी, कैसी भी परिस्थितियों में, अपने कार्यों द्वारा अपने लिए ग्रार्थिक स्वाधीनता की स्थापना कर सकता है। श्रम व्यवस्था में किसी भी तरह का परिवर्तन या तो बेकार होगा या हानिकारक होगा। हम अपने लिए जो ग्रार्थिक विकास चाहें करें, इसमें सबको स्वतन्त्रता है। धीरे-धीरे यत्न करके हम अपने लिए सुविधा का संतुलन प्राप्त कर सकते हैं। भीतरी (देश के भीतर) व्यापार की स्वतन्त्रता, देश-देश में व्यापार की स्वतन्त्रता, कस्टम कर का धीरे-धीरे कम होना, विशेषकर कच्चे माल पर तटकर कम होना, महान् ग्रौद्योगिक योजनाओं को अत्यधिक प्रोत्साहन देना, यातायात और संवाद-वहन की सुविधाएँ बढ़ाना और निर्माण करने वाली मशीनों को बढ़ाना—ये ही बातें हैं, जिन्हें समाज कर सकता है। अगर समाज इससे आगे बढ़कर आर्थिक दशा बदलने के लिए कुछ कदम उठाता है, तो वह एक बुराई ही होगी। अगर ये अर्थ-शास्त्री सही हैं, तब तो ग़रीबी का कोई इलाज ही नहीं। भग-वान् बचाये ऐसे अर्थशास्त्रियों से। यह नास्तिकता से भरा, निराशाजनक और आचार रहित निष्कर्ष है। परमात्मा ने आपका भविष्य अच्छा बनाया है। इन अर्थशास्त्रियों की बात को परमात्मा कभी सही न होने देगा।

अर्थशास्त्रियों के बताये इलाज तो केवल धन में अस्थायी उन्नति कर सकते हैं। इनसे धन का समान बँटवारा कहाँ होता है? मानवतावादी मनुष्य को अधिक सदाचारी बनाने पर ही ज़ोर देते है और अर्थशास्त्री केवल धन को बढ़ाने का रास्ता बताते हैं; पर इन दोनों में से यह किसी ने नहीं बताया कि मनुष्य और धन का मेल कैसे हो; अर्थात् मनुष्य को धन किस तरह बराबर बँटकर मिले ?

इसी का यह परिणाम है कि जैसे-जैसे कारखानों की पैदा-

वार बढ़ती गई और पूँजी दृढ़ होती गई, वैसे-वैसे ही श्रमिक वर्ग की गरीबी भी बढ़ती गई। जिनके पास पूँजी नहीं उनके लिए प्रतियोगिता, जिनके पास इतना भी धन नहीं कि वे छोटी-सी दस्तकारी शुरू कर सके उनके लिए मुकाबले की स्वतन्त्रता एक मज़ाक नहीं तो और क्या है ? जिन्हें शिक्षा नहीं मिली, जिन्हें विद्या नहीं प्राप्त हो सकी, जिन्हें अवसर नहीं मिल सका, वे अपने स्वतन्त्रता के अधिकार को कैसे प्रयोग में ला सकते हैं ? व्यापार की अधिक सुविधायें, वितरण और परिवर्तन की सुविधायें मज़दूरों को क्या लाभ देती हैं ? इनसे कारखानेदार या उपभोक्ता को लाभ पहुँच सकता है, न कि श्रमिक को। श्रमिक तो किसी तरह भी पूँजी के चंगुल से छुटकारा नहीं पा सकता।

धन के समान वितरण के बिना, उपभोग्य सामग्रियों के उचित बँटवारे के बिना, उपभोक्ताओं की संख्या क्रमशः बढ़ाये बिना, पूँजी अपने आर्थिक लक्ष्य से दूर हट जाती है। तब यह कुछ इने-गिने हाथों में ही सीमित रहकर निष्क्रिय हो जाती है और आवश्यकता से अधिक पदार्थों को बनाने में प्रयुक्त होती है या फिर मौज-शौक पर खर्च होती है। यह मज़दूर का हित-साधन करने के बजाय सट्टे और फाटके में लगी रहती है।

आजकल पूँजी ने श्रम को दास बना रखा है। यह आज के आर्थिक तन्त्र का एक बड़ा अभिशाप है। आज समाज तीन आर्थिक वर्गों में बँटा हुआ है। एक हैं—पूँजीपति (Capitalist) इनके हाथों में श्रम के साधन तथा यन्त्र हैं, जैसे—जगह, कारखाने, नकदी, कच्चा माल आदि। दूसरे हैं—ठेकेदार। ये श्रमिकों के मुखिया और उनको काम पर लगाने वाले हैं। ये बुद्धिजीवी हैं। इनकी भी आय अपेक्षाकृत स्थिर और स्थायी है। तीसरा वर्ग श्रमिकों का है। श्रमिक या मज़दूर शारीरिक श्रम करता है। काम से पहले उसकी मज़दूरी तय कर ली

जाती है। इनकी मजदूरी का कम या अधिक लाभ से सम्बन्ध प्रायः नहीं होता। इसका सम्बन्ध प्रायः मजदूरों की आवश्यकता और उनकी प्राप्ति के आधार पर होता है। यदि अधिक मजदूरों की आवश्यकता हो और मजदूर कम हों तो मजदूरी कुछ बढ़ जाती है, यदि मजदूरों की आवश्यकता कम हो और मजदूर अधिक मिलते हों तो मजदूरी कम होगी। समय भी मजदूरों के हाथ में नहीं होता। आर्थिक या राजनीतिक संकट, अचानक नये यन्त्रों का आ जाना, औद्योगिक कर्म की विभिन्न शाखाओं के काम, औद्योगिक निर्माण की अनियमितताएँ, एक ही तरह के निर्माण की अधिकता आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे श्रमिकों पर संकट आते ही रहते हैं। इसलिए श्रमिक को या तो बिना काम के रहना पड़ता है या जो कुछ भी मजदूरी उसे दी जाय, उसे स्वीकार करनी पड़ती है।

यह बातें मजदूर वर्ग के लिए एक रोग का काम करती हैं, जिसका इलाज अवश्य होना चाहिए। अर्थशास्त्री इन बीमारियों का इलाज निकालने में असमर्थ हैं। फिर भी मजदूर वर्ग की दशा में कुछ-न-कुछ सुधार अवश्य हुआ है। ऐतिहासिक परिवर्तनों ने उनकी कुछ बाधाओं को दूर किया है। आज वे दास नहीं समझे जाते। अब उन्हें एक काम करना है कि वे मज़दूरी के जूए से अपने आप को छुड़ाएँ। उन्हें स्वतन्त्र निर्माता बनना है। अपने निर्माण के पूरे मूल्य का स्वामी उन्हें बनना है। यह कैसे हो सकता है?

इसके लिए श्रमिकों को ही स्वयं परिश्रम करना होगा और समाज से सहायता लेनी होगी। क्योंकि समाज का पवित्र कर्तव्य है, अपने सदस्यों की दशा सुधारना। मजदूरों को शान्तिमय तरीकों से महानतम तथा सुन्दरतम क्रान्ति करनी है, उस क्रान्ति के द्वारा श्रमिक ही समाज के आर्थिक ढाँचे का आधार बन

जाएँगे। उन्हें आपस में संगठित होकर निर्माण और उपभोग के बीच में सन्तुलन बनाना होगा। वर्ग-भेद मिटाना होगा और अत्याचार के मूल कारण—विषमता की जड़ उखेड़नी होगी। विषमता ही है, जो एक प्रकार के मज़दूरों को दूसरे प्रकार मजदूरों का मालिक बना देती है; अन्यथा सब समान ही हैं।

मजदूर वर्ग के लिए समाज के कर्तव्यों पर अब बहुत से विचारक ध्यान भी देने लगे हैं। इसका श्रेय प्रजातन्त्रवाद के प्रचार को है। इससे भविष्य में आर्थिक क्रान्ति की आशा होने लगी है। फ्रांस में समाजवाद के नाम से कुछ इस प्रकार के प्रयत्न हुए; परन्तु वह आन्दोलन शीघ्र ही पथभ्रष्ट हो गया और सिवाय निम्न मध्यम-वर्ग को भयभीत करने के, इस आन्दोलन से श्रमिक वर्ग का कुछ भी हित न हो सका। यहाँ समाजवाद, साम्यवाद आदि का विश्लेषण करने या उन पर बहस करने का अवसर नहीं है। इन सबके मूल में अच्छे विचार ही रहे हैं। इसलिए प्रगतिवादी इन विचारों का गुणगान ही करते हैं; परन्तु जिस प्रकार से उन लक्ष्यों को प्राप्त करने की बातचीत की जाती है, वे हिंसापूर्ण हैं।

प्रगति कदम-कदम करके, उन कानूनों के अनुरूप चलकर होती है, जिन्हें मनुष्य की शक्ति कभी तोड़ नहीं सकती। क्रमिक विकास और निरन्तर सुधार द्वारा ही समाज के विधानों और उसकी रचना में सुधार किया जा सकता है, नहीं तो कई बार रोग को दूर करते-करते रोगी की जान ही खतरे में पड़ सकती है; अर्थात् समाज में एकाएक सुधार करने के प्रयत्न में अराजकता का भय पैदा हो जाता है।

मनुष्य के साथ कुछ बातें जन्मजात होती हैं, वे उसका अनिवार्य अंश होती हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को बदलना कठिन होता है,

शताब्दियाँ बीत गईं और विभिन्न देशों में मनुष्य विभिन्न प्रकार से जीवन व्यतीत करने लगे; परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं, जो मानवता में सदा से रही हैं। एक काल से दूसरे काल में उनके महत्व में भले ही अन्तर आता रहा हो; परन्तु उन बातों का समूल-नाश कभी नहीं हो सका। धर्म, स्वतन्त्रता, सभा-संगठन इत्यादि के साथ संपत्ति की इच्छा भी एक या दूसरे रूप में मनुष्य के मन में सदा से ही रही है।

मनुष्य के स्वभाव में ही संपत्ति का सिद्धान्त सदा से चला आया है। संपत्ति, मनुष्य के भौतिक जीवन की आवश्यकता को प्रकट करने का चिन्ह है। धर्म, विज्ञान और स्वतन्त्रता द्वारा मनुष्य अपनी चरित्र संबंधी तथा बुद्धि सम्बन्धी संपत्ति के स्वरूप को परिवर्तित करता है, सुधारता-सँवारता है, अपने शारीरिक श्रम द्वारा अपने भौतिक संसार को सुधारता-सँवारता है। जायदाद या संपत्ति उस भौतिक संसार के कर्त्तव्य की पूर्ति का मूर्त रूप है।

इसलिए सिद्धान्त रूप में जायदाद या संपत्ति का भाव अमिट है और यह सदा से चला आया है। आप मानवता के इतिहास में पाएँगे कि उसने इसे सदा बढ़ाने और सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। हाँ, संपत्ति के प्रयोग और शासन के नियम परिवर्तनशील हैं। इनमें मानव-जीवन की प्रगति के साथ-साथ परिवर्तन होना अनिवार्य है।

जो लोग संपत्ति के प्रयोग तथा प्रबन्ध के नियमों को अटूट और अपरिवर्तनशील मानते हैं, वे प्रगति से इनकार करते हैं। आप यदि इतिहास के कोई दो अध्याय एक साथ उठाएं, तो आप देखेंगे कि दोनों में संपत्ति या जायदाद के लक्षण, स्वरूप, प्रयोग और प्रबन्ध एक समान नहीं रहे। अब यदि जायदाद के प्रबंध या बँटवारे संबंधी नियम सही नहीं हैं, तो उसके आधार

पर कुछ लोग जायदाद या संपत्ति का ही विरोध करने लग जाते हैं। परन्तु व्यक्तिगत संपत्ति का विचार मनुष्य स्वभाव में जन्म-जात है और सदा रहा है। इसलिए संपत्ति संबन्धी विधानों या नियमों को बदलने की आवश्यकता है न कि संपत्ति को मिटा देने की। जो व्यक्तिगत संपत्ति का विचार ही मिटा देने पर तुल गए हैं, वे प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले ही सिद्ध होंगे। यदि संपत्ति के विचार को समाप्त कर दिया गया, तो कुछ ही काल उपरान्त यह विचार फिर पहले की तरह ही जड़ जमा लेगा।

आज संपत्ति का बँटवारा अपने अनुचित स्वरूप में विद्यमान है; क्योंकि इसका आधार आक्रमण और विजय पर आश्रित है। कुछ लोग दूसरों पर आक्रमण करके उनकी जायदाद पर अधिकार कर लेते थे। आज की जायदादें प्राय: उन्हीं के अवशेष हैं। पूँजीवाद में पुन: जायदाद का बँटवारा हुआ और पूँजीपति तथा श्रमिक में, श्रम के फल से उत्पन्न धन से बनी संपत्ति का, गलत ढंग से बँटवारा हुआ। राजनीतिक तथा वैधानिक अधिकार पूँजीपति के पक्ष में हैं और श्रमिक की कोई सुनवाई नहीं। इसीलिए संपत्ति या जायदाद पर कुछ लोगों का एकाधिकार रह गया है। जायदाद का प्रबंध ग़लत हुआ; क्योंकि कर सही ढंग से नहीं लगाये गये। विधान असेम्बलियों में इस तरह के कानून पास किये गये जो पूँजीपति को धन पर विशेष अधिकार देते हैं और निर्धन वर्ग को दबाते हैं। वे ग़रीबों से उनके धन बचाने के अधिकार को, कानूनी धाराओं द्वारा छीन लेते हैं।

कुछ लोग तो संपत्ति को ही मिटा देने का नारा लगाते हैं; पर वे उन जंगलियों की तरह हैं, जो फल पाने के लिए पेड़ को ही काट देते थे। हमें तो उस सिद्धान्त को पकड़ना चाहिए कि जो जिस वस्तु का निर्माण करे, उसका उस पर अधिकार हो

और यह कि श्रमिक के सिवा जायदाद का निर्माण और कौन कर सकता है ? सार रूप में हम यों कह सकते हैं कि समाज को इस ढंग से व्यवहार करना चाहिए जिससे संपत्ति का बँटवारा अधिक समता से हो सके। मज़दूरी निर्धारण ऐसे ढंग से होना चाहिए कि श्रमिक भी अपनी जायदाद बना सके, वैसे ही जैसे कि पूँजीपति बनाता है।

कर का ढंग भी बदलना चाहिए, जिससे गरीब आदमी भी अपने श्रम से जीवन-निर्वाह के बाद बचाकर जायदाद बना सके। इसके साथ ही जायदाद या संपत्ति के विशेषाधिकारों को भी कम किया जाना चाहिए। विधान-निर्माण में हरएक व्यक्ति का, मतदान के द्वारा, समान अधिकार होना आवश्यक है। ये सब बातें संभव तथा न्यायपूर्ण हैं। आप अपने आपको शिक्षित करके और संगठित होकर उन बातों को कार्य रूप में परिणित कर सकते हैं।

कुछ समाजवादी तथा साम्यवादी विचारकों के मत में, व्यक्तिगत संपत्ति को हटाना, समानता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कुछ इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं—"धर्म में भ्रष्टाचार है—धर्म को मिटा दो। सरकार दमन करती है तो सरकार को मिटा दो। राष्ट्रवाद धर्म जैसी संकीर्णता पैदा करता है, उसे मिटा दो। वर्ग का विशेषाधिकार जनसाधारण को दबाता है, उसे समाप्त कर दो। वंशाभिमान का गौरव ऊँच नीच पैदा करता है, उसे भी मिटा दो।"

परन्तु भूलों के सुधार का यह मार्ग सही नहीं है। कल ऐसे लोग यह भी कह सकते हैं कि हवा दूषित है, साँस लेना भी बन्द कर दो। स्वतन्त्रता के नाम पर अराजकता फैलाना भयंकर काम है। इससे तो समाज की समप्ति होकर डिक्टेटरशिप का भय पैदा हो जाता है।

साम्यवाद का सामान्य सिद्धान्त यह है—उत्पादन और निर्माण के सभी साधनों—अर्थात् जगह, पूँजी, मशीन, मज़दूरी के औज़ार सबका स्वामी राज्य होगा। राज्य हरएक व्यक्ति के श्रम के भाग का निर्धारण करेगा और वही वेतन मज़दूरी का भी निश्चय करेगा। उसमें सर्वथा समानता रहेगी अथवा राज्य, श्रमिक की आवश्यकता के आधार पर उनका निर्धारण करेगा।

यदि ऐसी स्थिति हो जाय, तो स्वतन्त्रता, मानमर्यादा, व्यक्ति की आत्मा, आदि सब बातें समाप्त हो जाएँगी और मनुष्य भी एक मशीन की तरह हो जाएगा। इससे भौतिक जीवन की तुष्टि भले ही हो जाए; परन्तु आचार सम्बन्धी तथा बौद्धिक जीवन समाप्त हो जाएगा। इसके साथ ही व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता, सभा-संगठन की स्वतन्त्रता, उपज तथा निर्माण में प्रोत्साहन, संपत्ति के आनन्द और प्रगति के लिए सारी प्रेरणाएें समाप्त हो जाएँगी।

साम्यवादियों का यह भी कहना है कि इस प्रकार समानता प्राप्त की जा सकतो है। पर श्रम को बाँटने में समानता तो असंभव है। श्रम का समान बँटवारा कैसे हो सकता है ? काम भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। इनकी नापतोल घंटों से नहीं हो सकती और ना ही इनकी पैमाइश काम में खर्च होने वाली शारीरिक या बौद्धिक मेहनत से ही हो सकती है, न ही किसी काम में खर्च होने वाली शक्ति के हिसाब से हो सकती है। यदि एक घण्टा कोयले की खान में काम किया जाए और एक घण्टा कताई के कारखाने में खर्च किया जाए तो क्या दोनों एक ही समान होंगें ? समय को नापने के साम्यवादियों ने कई मार्ग निकाले हैं। लेकिन दुर्बल और बलवान के बीच की विषमता को दूर करने का वे क्या उपाय निकालेंगे ? एक मनुष्य को बौद्धिक

शक्ति अधिक है और दूसरा मन्द बुद्धि है; एक शान्त स्वभाव है और दूसरा उग्र स्वभाव वाला। इसलिए बराबर काम बाँटने का सिद्धान्त अव्यावहारिक है।

अब उत्पादन के समान बँटवारे की बात को लीजिए, यह भी सर्वथा सम्भव है। या तो बराबरी बिल्कुल जड़ से होगी और इसमें बहुत-सा अन्याय होगा; क्योंकि यह शरीर रचना के भेद दृष्टि में न रखेगी और न यह कर्त्तव्य पालन के द्वारा उत्पन्न योग्यताओं को ध्यान में रखेगी। किसी की आवश्यकता कम है उसको अधिक मिलेगा; किसी की आवश्यकता अधिक है उसे कम मिलेगा। मनुष्य काम कम करे या अधिक जब उसे बराबर ही मिलना है तो उसे क्या आवश्यकता है कि वह अधिक काम करे। फिर इस बात का निपटारा कौन करेगा कि किसी व्यक्ति की आवश्यकता क्या है ? क्या राज्य यह निर्णय करेगा ? क्या आप उन लोगों के हाथों में इस तरह बिकने को तैयार हैं जो कि अधिक शिक्षा पाकर आपके शरीर और मस्तिष्क के मालिक बन जाएगें, जो आपके काम का निश्चय करेंगे, आपकी कार्यशक्ति का निश्चय करेंगे और आपकी आवश्यकताओं का निश्चय करेंगे। क्या यह पुराने जमाने की दास प्रथा की ओर लौटना न होगा ? क्या यह नये मालिक स्वार्थ भावना से प्रेरित न हो सकेगें' और ऊँचे खानदान और ऊँची जाति की निरंकुश एकाधि-नायकता स्थापति करने की कोशिश न करेंगे ?

नहीं, नहीं ! साम्यवाद श्रमिकों में और दूसरे लोगों में समता नहीं ला सकता, निर्माण नहीं बढ़ा सकता जिसकी कि आज बहुत अधिक आवश्यकता है; क्योंकि जब जीवन के साधन मिलने निश्चित हो जाते हैं तो उपज और निर्माण अधिक करने के लिए साधारण मनुष्य को कोई प्रेरणा नहीं रह जाती, वैज्ञानिक खोज के लिए कोई प्रोत्साहन न रहेगा। सामूहिक

कार्य में मनुष्य अपने दोषों को छिपा जायेगा।

साम्यवाद केवल एक ही रोग का इलाज करता है—भूख का। लेकिन बाकी रोग ज्यों के त्यों रह जाते हैं। इससे निर्माण कम होता है, प्रगति रुकती है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। सारे विश्व द्वारा स्वीकृत सभ्यता की स्थिति को हटाकर किसी एक व्यक्ति की मनमानी बात के अनुसार मनुष्यों को कुछ एक बुद्धिवादी लोगों के हाथों की कठपुतली बनाने से काम नहीं चलेगा। हम यहाँ संसार में मानवता को बनाने नही आए बल्कि उसको जीवित रखने आए हैं। हम मानवता के बिगड़े हुए रीति-रिवाजों में सुधार कर सकते हैं किन्तु उसकी प्रवृत्तियों को कुचल नहीं सकते। मानवता इस का विरोध करती आई है। वह इसके विरुद्ध विद्रोह करती आई है।

श्रमिकों की कठिनाइयों का यह भी इलाज नहीं है कि उनके वेतन बढ़ा दिए जाएं; क्योंकि श्रमिकों के वेतन बढ़ाने का अर्थ है उत्पादन व्यय बढ़ना। उससे वस्तुओं के मूल्य बढ़ेंगे। मूल्य बढ़ने से उनका उपभोग कम होगा। इससे उपज घटानी पड़ेगी और परिणाम-स्वरूप श्रमिकों में बेकारी बढ़ेगी। इन कष्टों का उपाय एक ही है कि पूँजी और श्रम एक ही हाथों में इकट्ठे कर दिए जाएं। जब समाज में निर्माता (Consumer) और उपभोक्ता (Producer) में भेद न रहेगा अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति निर्माता भी होगा और उपभोक्ता भी, तब श्रम का फल सारा का सारा श्रमिकों में ही बटेगा। पूँजीपति और दलाल बीच में न रहेंगे। विक्रय भी श्रमिक के हाथों में होगा तो निर्धनता का कारण मिट जायगा।

आप अपने चारों और दृष्टि दौड़ाइये। आप देखेंगे की जहाँ कहीं भी पूँजी और श्रम एक ही हाथ में हैं—जहाँ श्रम का लाभ श्रमिकों में बराबर बँट जाता है, जहाँ प्रत्येक श्रमिक सामूहिक

कार्य में बढ़-चढ़कर भाग लेता है और निर्माण को बढ़ाने का प्रयत्न करता है कि वहाँ गरीबी घटती जाती है और चारित्रिक उन्नति भी होती है।

भावी अच्छा समाज इस प्रकार का होगा कि श्रमिक अपना संगठन बनायेंगे, वे डटकर श्रम करेंगे और श्रम के लाभ को आपस में बाँट लेंगें। बस यही आपकी मुक्ति का रास्ता है। एक समय था जब आप दास थे, फिर आप नौकर बने, इसके बाद आप मजदूर बने पर उपरोक्त रीति से काम करके आप निर्माता संगठन के स्वतन्त्र सदस्य और आपस में भाई-भाई हो सकते हैं।

संगठन स्वतन्त्र हो, लोग उसमें अपनी इच्छा से सम्मलित हों, उन लोगों को उसमें सम्मिलित कीजिये जिन्हें काम का ज्ञान है, जो आपस में प्रेम रखते हैं और एक दूसरे का सम्मान करते है। संगठन की सदस्यता किसी पर थोपी नहीं जानी चाहिए। उसमें प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं का ध्यान रक्खा जाना चाहिए। इस प्रकार के गणतन्त्रवादी संगठन में भाई चारा होगा। आप उसमें अपनी इच्छा से शामिल होंगे और अपनी इच्छा से उसे छोड़कर अलग भी हो सकेंगे। राज्य का कोई एकाधिकारी उसमें रहने के लिए आपको बाध्य न कर सकेगा, आप अपनी प्रवृत्तियों के अनुसार संगठन बनाऐंगे। इस प्रकार का संगठन श्रमिक के लिए निरन्तर काम की गारन्टी होगी और अच्छे निर्माण की गारन्टी भी। कार्यकारिणी समिति के चुनाव में खड़े होने का प्रत्येक को समान अधिकार होगा। प्रत्येक बराबर पूँजी लगायेगा। जो पूँजी न लगा सकेगा उससे पहले वर्ष के लाभांश में से पूँजी लेकर उसे पूर्ण सदस्य बनाया जाएगा। यह पूँजी कभी बाँटी न जा सकेगी; बल्कि बढ़ती जाएगी, संगठन के सब सदस्यों की सामूहिक होगी, हरएक को पारिश्रमिक मिलेगा प्रत्येक को जीवन की आवश्यकता के अनुसार उसे दिया जाएगा। हरएक के काम

के अनुसार उसको मशीन और औजार संगठन की ओर से दिये जायेंगे। प्रारम्भ में तो प्रत्येक को कुछ बलिदान करना पड़ेगा; परन्तु प्रत्येक का भविष्य उज्जवल होगा। पर प्रश्न यह है कि पूँजी कहाँ से आयगी ? यह प्रश्न सचमुच बहुत मुश्किल है। पूँजी का आरम्भिक आधार तो आपकी बचत में से होगा जो आप बलिदान की भावना को लेकर करेंगे। भविष्य को सुधारने के लिए यदि आपको कुछ कष्ट सहना पड़ता है तो आप प्रसन्नता पूर्वक सहें। फिर आपके साथ कुछ उदार छोटी पूँजी वाले भी मिलेंगे पर आप अपने व्यवहार से उनमें विश्वास पैदा करें। इसमें सरकार भी आंशिक सहायता दे सकती है।

———

सारांश

राज्य अथवा सरकार जो कि कानून द्वारा स्थापित संस्था है, यदि वास्तव में शिक्षा और प्रगति के आधार पर स्थापित हुई हो, तो निश्चय ही जनता की कृतज्ञ होगी; क्योंकि जनता ने ही उसे वह आसान दिया होता है। जनता का उस पर ऋण होता है; परन्तु राष्ट्रीय सरकार स्वतन्त्र और संगठित जनता की अपनी सरकार ही इस प्रकार की कृतज्ञता को अनुभव करती है। इस तरह की सरकार बिना दबाब या हिंसा के ही जनता की समस्याओं को हल करने व उसे हर प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार हो जाती है। फिर धनी लोगों से धन छीन कर काम चलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तब एक वर्ग को दूसरे वर्ग से भिड़ाने की आवश्यकता नहीं रहती। तब अन्यायपूर्ण, आचारहीन और राष्ट्रघातक उपायों का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

राष्ट्रीय सरकार निम्नलिखित विधियों से शक्तिशाली सहायता दे सकती है। सरकार जनता के लोगों के संगठन को स्वीकृति देकर उसका विज्ञापन करने में उसकी सहायता करे, व विधान-सभा द्वारा ऐसे संगठनों की स्थापना को स्वीकृति दे दे। डाक-तार व टेलीफोन आदि की पूर्ण सुविधा दे और यातायात और एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लाने ले-जाने की हर प्रकार की बाधा दूर करे। ऐसे सरकारी भण्डार बनाये जिनमें इन संगठनों का माल पहुँचते ही, उसके अनुमा-

नित मूल्य का एक बैंक बिल निर्माता संगठन को मिल जाए, जिससे कि वह अपने निर्माण कार्य को आगे जारी रख सके। सरकार का निर्माण विभाग ऐसे संगठनों को रियायती दरों पर भवन आदि निर्माण करके दे। सरकार कानूनों को सरल बनाकर ऐसे संगठनों की स्थापना को बढ़ावा दे। विधान सभा ऐसे कानून पास करे जिससे ऐसे संगठन जमीन की खरीद आसानी से कर सकें। सरकार उलझन भरे प्रत्यक्ष और परोक्ष करों के स्थान पर एक ही आय कर लगाये। सरकार इस सिद्धान्त को स्वीकार करे कि जीवन पवित्र है और उसकी रक्षा उससे भी पवित्र कर्त्तव्य है। यदि जीवन नहीं होगा तो न काम होगा न प्रगति होगी और न कर्त्तव्यों का पालन ही सम्भव होगा। इसलिए सरकार जीवन को रखने के लिए आवश्यक आमदनी से अधिक आमदनी होने पर ही टैक्स लगाये।

सरकार बिना साम्प्रदायिक भेद-भाव के सब सम्प्रदायों के धार्मिक स्थानों से मिलने वाली आय को जनता की शिक्षा के साथ ही इन संगठनों में भी खर्च करे। इसके अतिरिक्त सरकार और भी कई साधनों से धन एकत्रित करके इन संगठनों की सहायता कर सकती है या वह एक ऐसी राष्ट्रीय निधि बना सकती है जो देश की बौद्धिक और आर्थिक प्रगति में सहायता देती रहे। सरकार इन संगठनों की सहायता के लिए इनकी निर्माण शक्ति के आधार पर, इन्हें कुछ प्रतिशत ब्याज पर ऋण भी दे सकती है। इस कार्य के लिए वह स्थानीय बैंकों को नियुक्त कर सकती है, जिनको सलाह देने के लिए चुने हुए सदस्यों की समितियाँ बनाई जा सकती हैं। इस प्रकार के संगठनों की स्थापना से राष्ट्र का धन कुछ एक धनी लोगों में इकट्ठा होने की बजाय सारी जनता में बराबर बँट जायेगा और राष्ट्र की शक्तिशाली जनता विश्व मानवता की योग्य सदस्य

बन सकेगी; परन्तु ध्यान रहे कि इस प्रकार के संगठनों की सफलता के लिए जनता की सर्वप्रिय एवं राष्ट्रीय सरकार की स्थापना आवश्यक है। परन्तु सावधान! इस प्रकार के पवित्र कार्य सफलता के निकट पहुँचकर असफल हो जाया करते हैं; क्योंकि लोग भ्रष्टाचारी हो जाते हैं। ऐसे अवसर पर आपका कर्तव्य है कि आप अपने चरित्र व्यक्तिगत स्वार्थ से दूर रखें। आत्म-बलिदान, परिश्रम और प्रेम के द्वारा सफलता प्राप्त करें। यदि आप कर्तव्य के नाम पर उनको सफल बनाना चाहेंगे तो सफल हो जायेंगे और यदि अहंकार के नाम पर और अपने आप को सुख व आराम में रखते हुए सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे तो अपने लक्ष्य में असफल होंगे। भले ही आपको आर्थिक सफलता मिल जाए। पदार्थवादी या भौतिकतावादी इस काम में सफल नहीं हो सकता; क्योंकि वह अपने आराम, सुख और आनन्द को पूरा करने के साथ-साथ इस काम में सफल होना चाहेगा। ऐसे लोगों के मुँह पर वीरतापूर्ण शब्द पढ़े हुए होंगे, उनके होठों पर स्वतन्त्रता का नारा हर समय रहेगा। सरल हृदय लोग उनको अपने में तुरन्त मिला लेंगे लेकिन जब कभी अवसर आयेगा तो ऐसे लोग उस अवसर को अपनी व्यक्तिगत जीत या कायरतापूर्ण सन्धि में बदल डालेगे क्योंकि जनता को ऊँचा उठाने से पहले अपने आराम और आनन्द को सुरक्षित रखना उनका आनन्द होता है। वास्तव में जनता को ऐसे ही शत्रुओं से सदा सावधान रहने की आवश्यकता है।

यह एक ऐसी दुखभरी कहानी है कि जिस पर खून के आँसू आते हैं। ऐसे व्यक्तियों को देखा गया है जो ईश्वर को नहीं मानते, कर्तव्य पालन को गुण नहीं मानते, आत्म-बलिदान में विश्वास नहीं रखते, वे केवल अपने आनन्द और मौज-बहार को ही जीवन को लक्ष्य मानते हैं। इसमें उनका नहीं उनके

दृष्टि-कोण का दोष है। भौतिकवाद (Materialism) यही सिखलाता है। इसमें विश्वास रखने वाले लक्ष्य के प्रति झूठे, राष्ट्र के प्रति भी झूठे और अपने प्रति झूठे सिद्ध होते हैं। ईश्वर के बिना, ईश्वरीय कानून के बिना, सदाचार के बिना, आत्म-बलिदान के बिना कभी भी ऊँचा लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस मार्ग पर चलकर आप अपने अभिमान की जीत, बदले की भावना की जीत, हिंसा की जीत और नाश की जीत भले ही प्राप्त कर लें परन्तु जनता के हित के लिए क्रान्ति नहीं कर सकते। जो आर्थिक संगठन आरामतलब और लालची लोगों द्वारा बनाये जाऐंगे, वे नये पूँजीपति खड़े करने के सिवाय और कोई हित साधन न कर सकेंगे।

आर्थिक संगठनों की सफलता, आप अपनी ईमानदारी, आपस की दया भावना, बलिदान की शक्ति और काम के लिए प्रेम द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। प्रगति करने के लिए आपको प्रगति के योग्य बनना पड़ेगा।

यह तीन बातें पवित्र हैं—परम्परा, प्रगति और संगठन।

परम्परा से हमारा तात्पर्य इस प्रकार है। शताब्दियों से मानवता भगवान् की आज्ञा को मानकर जीवन व्यतीत करती आई है, उसकी परम्परागत अच्छी बातों से मानवता की वर्तमान तथा भविष्य में निरन्तर लाभ उठाते रहना है। समय के अनुसार उन बातों में परिवर्तन या सुधार हो सकता है; पर उनको कूड़े का ढेर बताकर फेंक देने से मानवता सदियों के अपने अनुभव से वंचित हो जाएगी। परम्परा के तीन क्षेत्र हैं—परिवार, राष्ट्र और मानवता। तीनों की परम्परा में से अपने काल के अनुसार आपको अच्छी और जीवनोपयोगी बातें चुन लेनी हैं। व्यक्ति के सामूहिक हित के लिए परिश्रम करना है, उसे अपने आपको चारित्रिक पूर्णता तक पहुँचाने के साथ-साथ

दूसरों की भी सहायता करनी है। संपत्ति मनुष्य की सांसारिक (भौतिक) अवस्था को साकार करेगी। वोट का अधिकार उसके विचारों को मूर्त करेगा। भगवान् के सामने मनुष्य की योग्यता और अयोग्यता की यही परीक्षा है कि वह अपनी संपत्ति और मतदान (वोट) के अधिकार का ईमानदारी से प्रयोग करता है या नहीं। साम्यवादी लोग इन दोनों बातों को समाप्त करना चाहते हैं; परन्तु वे कुछ काल के लिए और जनता के कुछ भाग तक ही इस इच्छा को कार्यरूप में भले ही परिणित कर सकें; परन्तु यह काम चिरस्थायी नहीं हो सकता। प्रगति का अर्थ है—विचार प्रगति और कार्य प्रगति। भूतकाल में मनुष्य प्रगति करता आया है और भविष्य में करता रहेगा। इस बात में विश्वास नहीं रखना चाहिए कि हम अपने विचार के अनुसार मनुष्य की भावी प्रगति की रूपरेखा स्थिर करके उसकी स्वतन्त्र प्रगति को सीमित कर दें। बल्कि यह भी विश्वास रखना चाहिए कि मनुष्य के सामने यदि इन्द्रियों का सुख पाना ही एकमात्र लक्ष्य हो जाय तो वह श्रेष्ठतर, प्रिय, महान् या दिव्य कभी नहीं बन सकता। संगठन को प्रगति का एकमात्र साधन मानना चाहिये; क्योंकि इससे निर्माणकारी शक्तियों की सामर्थ्य कई गुना बढ़ जाती है। साथ ही संगठन के द्वारा अनेकों आत्माओं का सम्मिलन होता है और व्यक्ति का जीवन सामूहिक जीवन में विलय होकर श्रेष्ठ बन जाता है। संगठन कभी भी सफल नहीं हो सकता, जब तक कि इसके सब सदस्यों को समान स्वतन्त्रता न हो। बाद में स्वतन्त्र राष्ट्रों का भी संगठन स्थापित किया जा सकता है।

मनुष्य को खाने-पीने के लिए काफ़ी मिलना चाहिए और साथ ही उसे सारा दिन काम में ही लगा रहने को बाध्य नहीं होना चाहिए अपितु अपनी विशेष योग्यताओं के विकास तथा

उच्चतर-प्रशिक्षण के लिए समय अवश्य मिलना चाहिए। पर उस विचार से भय लगता है, जो मनुष्यों को यह स्वार्थ भाव पढ़ाता है कि अपने आपको बचाये रखना तथा आनन्द और मौज मनाना ही जीवन का लक्ष्य है । ऐसे उपदेशों से केवल एसे अहंकारी व्यक्ति ही पैदा किये जा सकते हैं, जो समाज के किसी काम न आएं और संकट के समय समाज को धोखा दें। इस प्रकार के व्यक्ति मानवता की शक्ति को चूस लेते हैं । ऐसे लोग मानवता के सामान्य विश्वासों में विश्वास नहीं रखते, वे उन बातों को नहीं मानते जो धरती और स्वर्ग को मिलाती हैं, वे विश्व और परमात्मा में विश्वास नहीं रखते। मानवता के सामान्य विश्वास के अभाव में मनुष्य निर्जीव पदार्थों के आगे सिर झुका देता है। वह तब एक ही देवता की जी-जान से उपासना करने लगता जिसका नाम है 'स्वार्थ'। उस सर्वनाशी देवता के पहले उपासक थे—राजा, राजकुमार और अत्याचारी सरकारें। उन्होंने भयानक फ़ार्मूला खोज निकाला था "सारी जनता मेरे लिए (मेरी सेवा के लिए)।" इस तरह के अहंकारियों ने ही गुलामी की तरह-तरह की प्रथायें चलाईं।

आपका एक पवित्र लक्ष्य है। सिद्ध कर दीजिये कि आप एक ही ईश्वर के पुत्र हैं और आपस में भाई-भाई हैं। इसको आप अमल में तब ला सकते हैं जब आप आत्मसुधार करें और अपने कर्तव्य का पालन करें।

आपका मुख्य, आवश्यक और अनिवार्य कर्तव्य देश के प्रति है। देश की स्वाधीनता की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, क्योंकि आर्थिक संगठनों की स्थापना एक स्वतन्त्र और संगठित राष्ट्र में ही भली-भांति हो सकती है। राष्ट्र के राजनीतिक जीवन में भाग लेने से ही आपकी जीवन स्थिति अच्छी हो सकती है। स्वतन्त्र मतदान के बिना आप कभी भी अपनी

आकांक्षाओं को पूर्ण नहीं कर सकते । इसलिये आपका लक्ष्य सारे राष्ट्र की सम्पूर्ण जनता की सामूहिक प्रगति होना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का समान अवसर मिले ।

आपका परम कल्याण एक ही सिद्धान्त की विजय के आधार पर हो सकता है और वह सिद्धान्त है-- विश्व मानव परिवार की एकता । परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि मानव परिवार का आधा भाग ही आज सभ्य माना-जाता है, बाकी आधे भाग को नागरिकता, राजनीति और समाज की दृष्टि से समान नहीं माना जाता। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को भी नागरिकता, राजनीति और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है । उन्हें अभी तक पूरा व समान अधिकार नहीं दिया जाता। इन त्रुटियों को शीघ्र से शीघ्र दूर करके सारे संसार के मानव का एक सभ्य, सुसंस्कृत और पदार्थों से भरपूर परिवार बनाना आपका लक्ष्य होना चाहिये, तभी आप अपने कर्तव्यों को पूर्ण कर सकेंगे ।

———